ISSN 2319-3107

आंचलिक पत्रकार

427
सितंबर, 1981 से प्रकाशित
15 नवंबर 2017
मूल्य ₹ 25/-

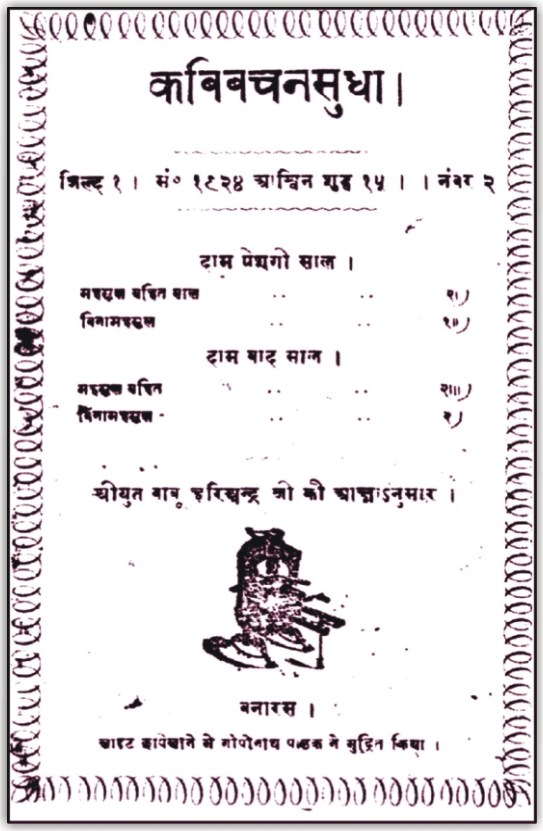

कविबचनसुधा।

जिल्द १। सं० १९२४ आश्विन शुद्ध १५। । नंबर २

दाम पेशगी साल।

महसूल सहित साल	१)
बिनामहसूल	१॥)

दाम बाद साल।

महसूल सहित	२॥)
बिनामहसूल	२)

श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र जी की आज्ञाऽनुसार।

बनारस।

लाइट छापेखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित किया।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र की ‘कवि वचन सुधा’ १५० साल के बाद

जनसंचार माध्यमों और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका
आर.एन.आई.पं.क्र. MP HIN/2004/12178, डाक पंजीयन क्र. म.प्र. भोपाल/162/2015-17

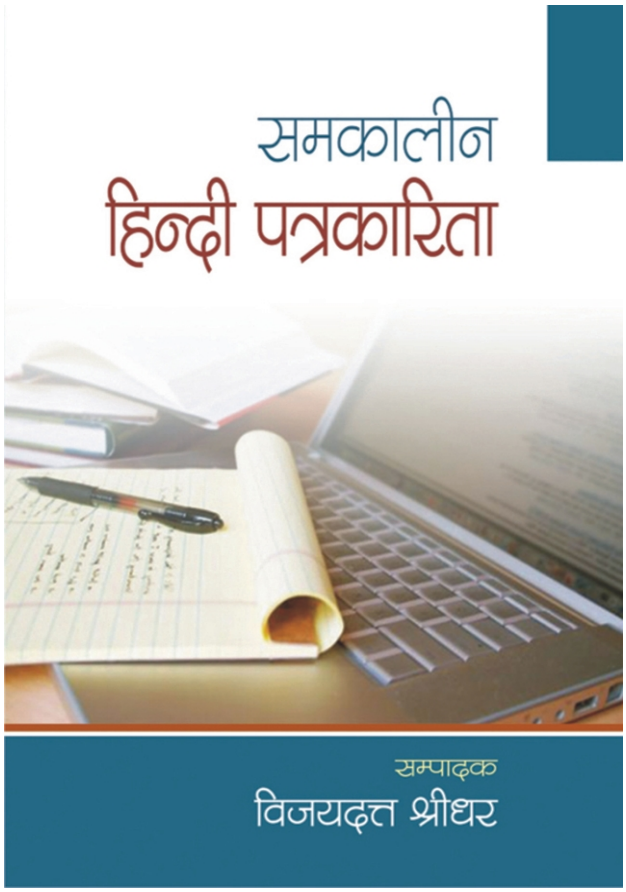

नाम
समकालीन हिन्दी पत्रकारिता

संपादक
विजयदत्त श्रीधर

प्रकाशक
सामयिक प्रकाशन, 3320-21,
जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, दिल्ली - 110002

मूल्य
₹ 495/-

ईमेल
samayikprakashan@gmail.com

आजादी के बाद की हिन्दी पत्रकारिता की पड़ताल का गंभीर प्रयास.....

सभी हिन्दी भाषी राज्यों के अनुभवी पत्रकारों की लेखनी से विवेचित हुआ है समकालीन हिन्दी पत्रकारिता का वृत्तांत। हिन्दीतर भाषी ..... राज्यों के लब्धप्रतिष्ठ संपादकों ने वहाँ की हिन्दी पत्रकारिता का प्रामाणिक ब्यौरा दर्ज कर इस पुस्तक को संपूर्णता प्रदान की है।..... पत्रकारिता के अध्येताओं और विद्यार्थियों के लिए एक जरूरी किताब।

ISSN 2319–3107

आंचलिक पत्रकार

जनसंचार माध्यमों
और विज्ञान संचार
की शोध पत्रिका

अनुक्रम

4. सप्रे संग्रहालय द्वारा युवा पत्रकारों से फेलोशिप के लिए प्रस्ताव आमंत्रित

5. भारतेन्दु हरिश्चंद्र की 'कवि वचन सुधा' 150 साल के बाद
अवधेश प्रधान

17. हिन्दी ग्रंथमाला और हिन्दी केसरी
डा. सच्चिदानंद जोशी

29. ऑडिएंस की बदलती अवधारणा : 1
लाल बहादुर ओझा,
निक्की तिवारी

33. उत्तरप्रदेश की समकालीन हिन्दी पत्रकारिता
सन्त समीर

42. जी. परमेश्वरन पिल्लै
संतोष कुमार शुक्ल

45. साहसी पत्रकार डैफने की शहादत
रमेश नैयर

46. एक ऋषि व्यक्तित्व का जाना
अभिजीत

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

नवंबर – 2017

वर्ष–37, अंक–3, पूर्णांक–427

एक प्रति – ₹ 25/– वार्षिक – ₹ 250/–

संपादक मंडल

(मानद)
डा. शिवकुमार अवस्थी
श्री अशोक मानोरिया
डा. मंगला अनुजा
डा. राकेश पाठक
श्री लालबहादुर ओझा

.....

संपादक

विजयदत्त श्रीधर

.....

संपर्क

फोन – (0755) 2763406
(0755) 4272590
(0755) 2552868

.....

E-mail
editor.anchalikpatrakar@gmail.com
sapresangrahalaya@yahoo.com

.....

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक
विजयदत्त श्रीधर द्वारा
दृष्टि आफसेट, भोपाल से
मुद्रित तथा माधवराव सप्रे स्मृति
समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान,
भोपाल (म.प्र.) 462 003 से प्रकाशित
संपादक
विजयदत्त श्रीधर

.....

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी फेलोशिप (अखिल भारतीय), गंगाप्रसाद ठाकुर पत्रकारिता फेलोशिप (म.प्र. और छ.ग.)

सप्रे संग्रहालय द्वारा युवा पत्रकारों से फेलोशिप के लिए प्रस्ताव आमंत्रित

माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल ने युवा पत्रकारों से दो फेलोशिप के लिए प्रस्ताव आमंत्रित किए हैं। इनमें से एक 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी फेलोशिप' (अखिल भारतीय) और दूसरी 'गंगाप्रसाद ठाकुर पत्रकारिता फेलोशिप' (म.प्र. और छ.ग.) है। फेलोशिप के लिए 25 से 40 वर्ष तक की आयु के युवा पत्रकारों से 1 से 30 नवंबर के बीच प्रस्ताव बुलाए गए हैं। प्रस्ताव के साथ फेलोशिप के लिए प्रस्तावित विषय की विस्तृत रूपरेखा (सिनॉप्सिस) प्रस्तुत करनी है। फेलोशिप एक वर्ष के लिए है। प्रत्येक के लिए ₹ 50,000/- मानदेय निर्धारित है। प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के स्नातकोत्तर उपाधिधारी युवा पत्रकार फेलोशिप के लिए स्व-लिखित आवेदन कर सकते हैं। आवेदनों और सिनॉप्सिस की छानबीन हिन्दुस्तान टाइम्स एवं इंडियन एक्सप्रेस के पूर्व संपादक श्री चंद्रकांत नायडू की अध्यक्षता में गठित विषय विशेषज्ञों की समिति करेगी।

युवा पत्रकारों में मौलिक और अछूते विषयों में गहन अध्ययन, तथ्य संकलन, विश्लेषण, बेहतर भाषा और भाव-अभिव्यक्ति एवं संप्रेषण कला को परिमार्जित और प्रोत्साहित करना फेलोशिप का उद्देश्य है। भाषा हिन्दी होगी।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी फेलोशिप (अखिल भारतीय) के लिए आवेदन का दायरा राष्ट्रीय होगा। इस फेलोशिप के अंतर्गत साहित्य, कला, संस्कृति, भाषा, पुरातत्व, पुरालेख संबंधी विषय होंगे। (जीवनियाँ, दलगत राजनीति और धर्म-जाति फेलोशिप के विषय नहीं हैं)। भारतीय भाषाओं में अंतरसंवाद पर विशेष जोर रहेगा।

गंगाप्रसाद ठाकुर पत्रकारिता फेलोशिप (म.प्र. और छ.ग.) के लिए आवेदन का दायरा मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ होगा। इस अध्ययन में सामाजिक सरोकारों को वरीयता दी जाएगी। ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा, चिकित्सा, कृषि-पर्यावरण, प्रदूषण, लोक प्रशासन, सामाजिक समरसता आदि विषय क्षेत्रों से फेलोशिप का विषय चुना जा सकता है।

फेलोशिप के संबंध में सप्रे संग्रहालय का निर्णय अंतिम और बंधनकारी होगा।

फेलोशिप समिति में श्री चंद्रकान्त नायडू अध्यक्ष तथा डा. रामाश्रय मिश्र 'रत्नेश', डा. शिवकुमार अवस्थी, श्री राकेश दीक्षित, श्री विजय मनोहर तिवारी तथा श्री गिरीश उपाध्याय सदस्य हैं। सप्रे संग्रहालय की निदेशक डा. मंगला अनुजा समिति की समन्वयक होंगी।

चंद्रकान्त नायडू
अध्यक्ष - फेलोशिप समिति
मो. 09415550666
<chandrakant.naidu@gmail.com>

विजयदत्त श्रीधर
संस्थापक-संयोजक, सप्रे संग्रहालय
मो. 09425011467
<sapresangrahalaya@yahoo.com>

भारतेन्दु हरिश्चंद्र की 'कवि वचन सुधा' 150 साल के बाद

■ अवधेश प्रधान

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने आज से 150 वर्ष पहले 'कवि वचन सुधा' जैसा साहित्यिक पत्र निकाल कर हिंदी प्रदेश में राष्ट्रीयता और नवजागरण की चेतना का शंखनाद किया था। यद्यपि शुरू शुरू में अपने नाम के अनुरूप इसने पुरानी कविता के नमूने प्रकाशित किए जैसे महाकवि देव का अष्टयाम, बाबा दीनदयालु गिरि का अनुराग बाग, चंद बरदाई का रासा, जायसी का पदमावत, कबीर की साखी, बिहारी के दोहे, गिरिधर दास का नहुष नाटक, गुलिस्ताँ का अनुवाद आदि; लेकिन जल्दी ही भारतेन्दु ने इसके आदर्श वाक्य के अनुरूप गद्य के माध्यम से राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर आधुनिक और तेजस्वी विचारों का प्रवाह लाना शुरू किया। इसका आदर्श वाक्य था -

खलगनन सों सज्जन दुखी मति होंहि हरि पद मति रहै।
अपधर्म छूटै स्वत्व निज भारत गहै कर-दुख बहै।
बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होंहि जग आनंद लहै।
तजि ग्राम कविता सुकविजन की अमृतवाणी सब कहै।।

तुलसीदास ने मानस के आरंभ में जिन खलों की वंदना की थी, भारतेन्दु के समय में वे अँगरेजी राज के गोरे साहबों, उनके काले मुसाहिबों और देशी अनुचरों के रूप में उपस्थित थे। साधारण गरीब जनता से लेकर सुशिक्षित देशभक्त बुद्धिजीवियों और पत्रकारों-लेखकों तक सभी सज्जन उनसे पीड़ित थे। भारतेन्दु के हृदय में उनके प्रति सहानुभूति स्वाभाविक थी। 'हरिपद मति रहै'

वकौल रामविलास शर्मा ...

- *'कवि वचन सुधा' ने साहित्यकारों की एक पूरी पीढ़ी को भाषा, साहित्य और देशभक्ति की शिक्षा दी थी। निस्संदेह इतना गौरवपूर्ण कार्य किसी संपादक या पत्रकार ने आज तक नहीं किया।*
- *'कवि वचन सुधा' का एक एक पृष्ठ पवित्र है और एक दिन हिंदीभाषी जनता उसके ऐतिहासिक महत्व को अवश्य समझेगी।*
- *'कवि वचन सुधा' जनता के हितों के लिए लड़ने वाले निर्भय सैनिक की तरह थी। उसने अँगरेजी राज्य में जनता के शोषण की सच्ची तस्वीर खींची। उसने अँगरेजों के न्याय, जनतंत्र और उसकी सभ्यता का पर्दाफाश किया। उसने देश के उद्योगीकरण और शिल्प की शिक्षा के लिए संघर्ष किया। अपने प्रांत में हिंदी के चलन के लिए और राजकाज में उसके व्यवहार के लिए उसने शक्तिशाली आंदोलन किया। देश-विदेश के जीवन से उसने हिंदीभाषियों को परिचित कराया। संकीर्ण जातीयता के भाव उसे छू न गए थे।..... 'कवि वचन सुधा' की फाइलें भारतेन्दु युग का दर्पण हैं, वे एक युग का सजीव इतिहास हैं।''*
- *'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन आरंभ करके भारतेन्दु ने वास्तव में एक नए युग का सूत्रपात किया। पत्र-पत्रिकाओं ने हमारे जातीय जीवन को पहले कभी इतना प्रभावित न किया था और कोई भी पत्रिका हिंदी के चोटी के लेखकों को प्रभावित करने का ऐसा निरपवाद श्रेय नहीं ले सकती जैसे 'कवि वचन सुधा'।*
- *यह पत्रिका जनता का पक्ष लेने वाली, जनता के हितों के लिए संघर्ष करने वाली, राजनीति के पीछे चलने वाली इकाई नहीं वरन उसे मशाल दिखाने वाली सचाई थी।*
- *भारतेन्दु ने 'कवि वचन सुधा' के द्वारा हिंदी में निर्भीक देशभक्त पत्रकार-कला का आदर्श लोगों के सामने रखा। उनसे पहले लोगों ने पत्र निकाले थे लेकिन उनमें से कोई भी इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए जमकर न लड़ा था।*

और 'अपधर्म छूटै' में धार्मिक सुधार की मंशा है तो 'नारि नर सम होंहि' में समाज सुधार से आगे बढ़कर स्त्री-पुरुष संबंधों में समानता की क्रांतिकारी घोषणा है। विद्वान आपसी ईर्ष्या-द्वेष छोड़ें, लोग अश्लील और फूहड़ कविता का त्याग करें और 'सुकवि जन की अमृत वाणी' का आस्वादन करें। यह साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में नए जागरण की पुकार थी। अँगरेजी राज के टैक्स का बोझ दूर हो - यह फौरी माँग थी। लेकिन 'स्वत्व निज भारत गहै' तो मानो समग्र नवजागरण के स्थायी कार्यक्रम का केन्द्रीय नारा था जिसमें आधुनिक भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, साहित्यिक सभी क्षेत्रों में पराधीनता के विरुद्ध स्वाधीनता की आकांक्षा घनीभूत रूप से व्यक्त हुई थी। 'कवि वचन सुधा' के इस ध्येय का क्रांतिकारी महत्व रेखांकित करते हुए अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने बहुत सही लिखा था, ''जिस समय में इस सिद्धांत वाक्य की रचना हुई थी उस समय सुधार की किसी प्रकार की चर्चा नहीं थी और यह हिंदी प्रदेश घोर निद्रा में निमग्न था। उस समय 'नारि नर सम होंहि' कहने वाला बड़ा साहसी था। 'स्वत्व निज भारत गहै' में भावी स्वराज्य का संकेत था और ऐसे समय में ये विचार प्रकट किए गए थे जिस समय कांग्रेस का पता भी नहीं था।'' (समाचार पत्रों का इतिहास, पृ. 129)। सन 1885 में कांग्रेस का गठन हो जाने के बाद भी उसमें राजभक्ति का स्वर लंबे समय तक बना रहा।

भारतेन्दु का जन्म जिस रईस व्यापारी परिवार में हुआ था उसमें राजभक्ति की परंपरा पीढ़ियों से चली आ रही थी। पूर्वजों में कइयों को राजा और राय बहादुर की उपाधि मिल चुकी थी। सन 1857 की क्रांति के समय बनारस रेजिडेन्सी का कीमती सामान इन्हीं के घर में रखा गया था। स्वयं भारतेन्दु कुछ समय तक आनरेरी मजिस्ट्रेट रहे और बाद में म्युनिसिपल कमिश्नर भी बना दिए गए। अँगरेजों ने जिन बाबू शिवप्रसाद को पहले राजा और फिर सितारे-हिंद की उपाधि प्रदान की, भारतेन्दु उनके शिष्य रह चुके थे। लेकिन भारतेन्दु का जीवन, उनका लेखन और कर्म का प्रवाह क्रमशः राजभक्ति की उलटी दिशा में राजद्रोह और देशभक्ति की ओर बढ़ता गया और उनको इसकी कीमत भी चुकानी पड़ी। अँगरेजी राज की नीतियों और भारतीय समाज की सड़ी-गली सामंती रूढ़ियों के प्रति उनका जो क्रांतिकारी दृष्टिकोण नाटकों, प्रहसनों, और मुकरियों में कलात्मक रूप से व्यक्त हुआ था उसकी सीधी और तीखी अभिव्यक्ति 'कवि वचन सुधा' की टिप्पणियों में हुई थी।

सन 1870 में भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड म्यो साहब पधारे। इस उपलक्ष्य में काशी नरेश की कोठी में एक लेवी दरबार हुआ था। भारतेन्दु ने इस दरबार का एक व्यंग्य चित्र 'लेवी प्राण लेवी' शीर्षक निबंध में अंकित किया था जो उसी वर्ष 'कवि वचन सुधा' के कार्तिक शुक्ल 15 सं. 1927 (1870 ई.) के अंक में छपा था। दरबार में हाजिरी बजाने वाले रईसों का नाम लिखने की जिम्मेदारी मुंशी बद्रीनाथ की थी जो ''फूले फाले अबा पहने पगड़ी सजे पुराने दादुर की भाँति इधर-उधर उछलते और शब्द करते फिरते थे और बाबू भी वैसे ही छोटे तेंदुए बने गरज रहे थे।'' पहले लोगों ने कहा कि जूता पहन कर जाना मना है। फिर हल्ला हुआ कि 'चाहे जैसे जाओ'; इसके बावजूद रईसों की बहुसंख्या पहली आज्ञा के प्रति निष्ठावान बनी रही, ''शाहजादों के अतिरिक्त केवल चार रईस जूता पहिरे हुए थे।'' बंगाली बाबू ने सबका नंबर लगाना शुरू किया और ''पंडितों को दक्षिणा बटने वाली सभा की भाँति एक एक का नाम लेकर पुकार के बल्लमटेर की पलटन की चाल से सबको खड़ा कर दिया। बनारस के रईस भी कठपुतली बने हुए उसी गत नाचते रहे।'' भारतेन्दु की नजर में इन अँगरेज भक्त रईसों की हैसियत एक कठपुतली से ज्यादा न थी। राय नारायण दास के 'स्टैंड अप' कहने पर ये लोग खड़े हो जाते और 'सिटडौन' कहने पर बैठ जाते थे।

गरमी के मारे जामा, पगड़ी, दुशाले, कमखाब की चपकन पहने सभी श्रीमंतों के अंगों से पसीने की नदी बह रही थी ''मानो श्रीयुत को सब लोग आदर से अर्ध्य पाद्य देते थे।'' कुल मिलाकर लाट साहब का यह दरबार भारतेन्दु को जैसा लगा, उन्हीं के शब्दों में पढ़िए, ''वाह वाह दर्बार क्या था 'कठपुतली का तमाशा' था या बल्लमटेरों की कवायद थी या बंदरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगतना था या फौजदारी की सजा थी।'' अँगरेजों ने अपनी ब्रिटिश छतरी के नीचे जिस किस्म के डरपोक और चाटुकार रईस राजभक्तों की जमात खड़ी की थी उसके प्रति भारतेन्दु की घृणा 'लेवी प्राण लेवी' के एक-एक शब्द में भरी हुई है। वे उन रईसों की ऊपरी तड़क-भड़क के नीचे छिपी उनकी गुलामी और दुर्दशा को उजागर करते हैं। सबकी हाजिरी के बाद जब लाट साहब चले गए तब ''सब लोग इस बंदीगृह से छूट-छूट कर अपने-अपने घर आए।'' इस बंदीगृह के गुलामों में स्वाभिमान का लेशमात्र न था, ''रईसों के नंबर की यही दशा थी कि आगे के पीछे और पीछे के आगे अंधेर नगरी हो रही थी। बनारस वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा। ये विचारे तो मोम की नाक हैं चाहे जिधर फेर दो।'' भारतेन्दु की इस फटकार के पीछे है अपने हिंदी-प्रदेश की जनता के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति, ''हाय - पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायरपन छोड़ेंगे और कब इनकी उन्नति होगी और कब इनको परमेश्वर वह सभ्यता देगा जो हिंदुस्तान के और खंडवासियों ने पाई है।''

भारतेन्दु के जिन दो लेखों से अँगरेज हाकिम भड़क गए उनमें एक है 'लेवी प्राण लेवी' और दूसरा है 'मर्सिया'। कुछ लोगों का मानना है कि इन लेखों में अँगरेजी राज के विरोध जैसा कुछ न था फिर भी कुछ ईष्यार्लु लोगों के कान भरने और बहकाने से अधिकारी नाराज हो गए। भारत जैसे विशाल देश पर दो सदियों से भी अधिक समय तक राज करने वाले अँगरेज ऐसे बेवकूफ न थे कि 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित भारतेन्दु के लेखों का विद्रोही सुर न समझ पाएँ। उन्होंने 'मर्सिया' छपने के बाद 'कवि वचन सुधा' की सौ प्रतियों की सरकारी खरीद यों ही बंद न की थी। 'मर्सिया' में जिस राजा का मजाक उड़ाया गया था वह कौन था। किसी को कोई शंका न रहे, इसलिए भारतेन्दु ने इस पर 20 अप्रैल 1874 की 'कवि वचन सुधा' में 'शंका शोधन' शीर्षक एक टिप्पणी लिखी, ''वह राजा अँगरेजी फैशन था जो इस अपूर्ण शिक्षित मंडली रूप अंधेरनगरी का गुज करता था जब से बंबई और काशी इत्यादि स्थानों में अच्छे-अच्छे लोगों ने प्रतिज्ञा करके अँगरेजी कपड़ा पहिरना छोड़ देने की सौगंध खाई तब से मानो वह मर गया था।'' 'मर्सिया' से अँगरेज हाकिमों का नाराज होना स्वाभाविक था क्योंकि यह लेख अँगरेजी राज के खिलाफ था। 8 जून 1874 की 'कवि वचन सुधा' में भारतेन्दु ने अँगरेज सरकार की नाराजगी का हवाला देते हुए लिखा, ''आज कल हमारे पत्र के अष्टम मंगल आए हैं बहुत से लोग हम लोगों से अप्रसन्न हो रहे हैं, श्रीयुत डायरेक्टर साहब ने पत्र के संपादक को लिख भेजा है कि मर्सिया ऐसे बुरे आर्टिकल लिखने से तुम्हारे पत्र का गवर्नमेन्ट एड बंद किया गया।'' अँगरेज सरकार की नजर में 'मर्सिया' एक बुरा आर्टिकल था क्योंकि उसमें सच को उजागर किया गया था और अँगरेजों को सच से चिढ़ थी। 31 अगस्त 1874 की 'कवि वचन सुधा' में भारतेन्दु ने एक लेख लिखा 'सच मत बोलो'। इसमें आगाह किया गया था कि सच बोलने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी, ''अखबार वाले इतना भूँकते हैं कोई नहीं सुनता अंधेरनगरी है व्यर्थ न्याव और आजादी देने का दावा। सब स्वार्थ साधते हैं। कहोगे कि गवर्नमेन्ट के लोग तुमसे भला न मानेंगे। सारांश यह कि सच्ची बात जिनसे कहोगे वे तुम्हें शत्रु जानैंगे।'' 'अंधेर नगरी' नाम का प्रहसन भारतेन्दु ने 1881 में लिखा था लेकिन अँगरेजी राज ने जो अंधेर मचा रखी थी उसकी आलोचना वे बहुत पहले 'कवि वचन सुधा' के

पृष्ठों में करते आ रहे थे। कहना न होगा कि उनकी टिप्पणियों और लेखों में अंधेर, अंधेर गर्दी, अंधेर नगरी जैसी पदावली अक्सर दिखाई देती है और वह भी शुरू से।

सन 1857 के गदर की आग पर काबू पा लेने के बाद भारत में अँगरेजी राज का एक नया अध्याय शुरू हुआ। महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में भारतीय जनता के लिए ढेर सारे खुशनुमा वादे किए गए। इससे शिक्षित मध्यमवर्ग का भ्रमित होना स्वाभाविक था। इसे भारतेन्दु ने 'माया से मोहित होना' कहा है। अँगरेज अधिकारी और धर्म प्रचारक पादरी अपने व्याख्यानों के द्वारा भारत में उन्नति और शिक्षा प्रचार का सपना दिखलाया करते थे। भारतेन्दु ने 8 फरवरी, 1874 की 'कवि वचन सुधा' में लिखा, 'कुछ काल पहले अँगरेज लोग जब हिंदुस्तान के विषय में व्याख्यान देते थे तब यही प्रकट करते थे कि हम केवल इस देश के लाभ अर्थ राज्य करते हैं यही चिल्ला चिल्ला कर सर्वदा कहा करते कि हम सदैव हिंदुस्तान की बुद्धि के निमित्त विचार करते हैं कि हम लोग इस देश की वृद्धि करेंगे और यहाँ के निवासियों को विद्यामृत पिला देंगे और राज्य का प्रबंध किस भाँति करना यह ज्ञान जब प्रजा को स्वतः हो जाएगा तब हम लोग हिंदुस्तान का सब राज्य प्रबंध यहाँ के निवासियों को स्वाधीन कर देंगे और अंत को सब राम राम कह कर जहाज पर पैर रख स्वदेश गमन करेंगे। यह वार्ता हम लोग अपनी गढ़ी हुई नहीं कहते। पर इन्हीं अँगरेजों की और मुख्य करके पादरियों के जो व्याख्यान प्रसिद्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट प्रगट होता है यह प्रकार पाठक जनों के देखने में निस्संदेह आया ही होगा, इसमें संदेह नहीं।''

अँगरेजों ने भी अपने हिसाब से अच्छे दिन आने का वादा किया था लेकिन देश की समृद्धि के बजाय गरीबी और मूर्खता बढ़ती गई, ''अँगरेजों ने हम लोगों को विद्यामृत पिलाया और उससे हमारे देश-बांधवों को बहुत लाभ हुए इसे हम अमान्य नहीं करते परन्तु उन्हीं के कहने के अनुसार हिंदुस्तान की वृद्धि का समय आने वाला हो सो तो एक तरफ रहा पर प्रतिदिन मूर्खता, दुर्भिक्षता और दैन्य प्राप्त होता जाता है। अँगरेजों ने उनको अपने विद्या की रुचि लगाकर राजनीति में उनके चित्त को आकर्षण किया और सच्ची विद्या उन्हें न दिया और यही कारण है कि हम लोग इनकी माया से मोहित हो गए और हम लोगों को अपनी हानि दृष्ट न पड़ी।'' अँगरेजी राज की शिक्षानीति के फलस्वरूप शिक्षित वर्ग का चित्त उनकी राजनीति के पक्ष में खिंचता जाता था और उन्हें देश की दुर्दशा दिखाई न देती थी।

'कवि वचन सुधा' के द्वारा भारतेन्दु ने अँगरेजों की यह माया काटकर अपने पाठकों की आँख खोलने का काम किया। 8 फरवरी 1874 में अंक में भारतेन्दु ने लिखा था, ''परन्तु अब अँगरेजी माया छल और घात दृष्टि में आने लगा क्योंकि हम लोगों को केवल अँगरेजी भाषा प्राप्त हुई परंतु कला कौशल के विषय में हम लोग भली-भाँति अज्ञान सागर में निमग्न हुए हैं इसमें संदेह नहीं।''

एक भ्रम यह है कि अँगरेजों ने भारत में कानून का राज कायम किया। सच्चाई यह थी कि सन 1873 की फौजदारी दंड संहिता के अनुसार किसी यूरोपीय नागरिक के विरुद्ध मुकदमे की कार्यवाही जन्मजात यूरोपीय न्यायाधीश ही कर सकता था। बिहारी लाल गुप्त ने लॉर्ड रिपन से इस अनियमितता को समाप्त कर भारतीय जनों को यूरोपीय जजों के समान न्याय का अधिकार देने की अपील की। लॉर्ड रिपन ने कौन्सिल के विधि सदस्य मि. इलबर्ट को बिल तैयार करके कौंसिल में प्रस्तुत करने को कहा। आंतरिक कौंसिल और सभी प्रांतीय सरकारों ने इस बिल का समर्थन किया लेकिन ऐंग्लो इंडियनों और यूरोपियों ने इसका जमकर विरोध किया और अंततः लॉर्ड रिपन को इस बिल को संशोधित करके इसका रूप बदल देना पड़ा। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने इलबर्ट बिल को मूल रूप में लागू करने की आवाज उठाई। 14 अप्रैल 1884 की 'कवि वचन सुधा' में भारतेन्दु ने डा.

बेकस के मुकदमे में अन्याय और पक्षपातपूर्ण फैसले के खिलाफ 'ब्रिटिश बोर्न की जबदस्ती' शीर्षक अग्रलेख में लिखा, ''बंगाल, बंबई, मद्रास, पंजाब और पश्चिमोत्तर देश में कोई भी ऐसा जिला न होगा जहाँ अँगरेजों की जबरदस्ती का प्रचार न हो।..... न्यायालयों में न्याय करने के बदले उनके भाई बंद मजिस्ट्रेट सहानुभूति प्रकट करते हैं और अत्याचार के लिए दंड मिलने के बदले और एक दरजा बढ़ा दिया जाता है जिसका परिणाम आज के दिन ऐसा देखने में आता है कि हिंदुस्तानियों को वे खिलौना समझते हैं और जो नाच जी में आता है, नचाते हैं। भारतवर्ष की प्रजा का दुःख कोई नहीं सुनता।.....यदि किसी पर उतने दोषों का अपराध लगाया जाता जितने कि डा. साहिब ने किए तो इससे अधिक दंड मिलता।''

दूसरा भ्रम यह है कि अँगरेजी राज में सदियों के पिछड़े भारत में आधुनिक मशीनों और उद्योग धंधों का विकास हुआ, भारत समृद्ध हुआ। भारतेन्दु ने इस भ्रम का पर्दाफाश करते हुए लिखा कि दो सौ वर्षों में ''इन्होंने हमारे धनधान्य के वृद्धि में कोई उपाय नहीं किया और केवल अपनी भाषा सिखाया और सब व्यापार और धन सब अपने हस्तगत किया।'' अपने पाठकों के विवेक को झकझोरते हुए उन्होंने प्रश्न किया, ''क्या यह खेद की बात नहीं है कि हमको कला-कौशल से विमुख रखा और आप स्वतः व्यापारी बनकर सब देश भर का धन और धान्य अपने देश में ले गए।''

अँगरेज सरकार और उसके पिट्ठुओं ने रेल के जरिए विकास की बड़ी डींग हाँकी थी लेकिन भारतेन्दु ने 7 मार्च 1874 की 'कविवचन सुधा' में लिखा, ''हिन्दुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।''

देशी उद्योग और व्यापार का नाश, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से बेतहाशा लूट और देश के धन का विलायत चले जाना - यह थी अँगरेजी राज की अर्थनीति की सचाई जिसे भारतेन्दु ने बार-बार उजागर किया था। 22 दिसंबर 1873 की 'कविचन सुधा' में उन्होंने आगाह किया था, ''चाहे कैसे भी द्रव्य एकत्र किया हो अंत में सब जाएगा विलायत में क्योंकि हमारी शोभा की सब वस्तुएँ वहाँ से आवेंगी, कपड़ा, झाड़फानूस, खिलौने, कागज और पुस्तक इत्यादि सब वस्तु विलायत से आवेंगी उसके बदले यहाँ से द्रव्य जाएगा तो परिणाम यह होगा कि चाहे किसी उपाय से द्रव्य लो अंत में तुम्हारे देश से निकल जाएगा।''

अँगरेजी राज में विलायती वस्तुओं की ओर रुचि बढ़ी; परिणाम यह हुआ कि ''बढ़ई आदि छोटे-छोटे व्यापारियों को काम मिलना कठिन हो गया है यहाँ तक कि घर की खिड़कियाँ दरवाजे आदि सब विलायत से बनकर आते हैं।'' (9 फरवरी 1874, क.व.सु.)। छोटे व्यापारी, कारीगर और बहुसंख्यक किसान बदहाल हो गए, ''कपड़ा बनाने वाले, सूत निकालने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख माँगते हैं - खेती करने वालों की यह दशा है कि लंगोटी लगाकर हाथ में तूँबा ले भीख माँगते हैं और जो निरुद्यम हैं उनको तो अन्न की भ्राँति है।'' (9 मार्च 1874 क.व.सु.)

अँगरेजी राज में साल-दर-साल पड़ने वाले अकाल ब्रिटिश अर्थनीति की ऐसी भयावनी तस्वीर पेश करते हैं जिसे अँगरेज सरकार के तमाम अफसर और राजभक्त मिलकर छिपा नहीं सकते। भारतेन्दु जानते थे कि अकाल दैव का प्रकोप नहीं है, अँगरेजी राज की अनीति का परिणाम है।

उन्होंने 16 फरवरी, 1874 की 'कवि वचन सुधा' में बंगाल के अकाल के बारे में लिखा था, ''बंगाल में दुर्भिक्ष क्या है केवल अनीति के बीज का फल है क्या कारण है कि दिन-दिन महँगाई बढ़ती जाती है और अन्न गत वर्ष में 12 सेर का बिकता था सो इस वर्ष 8 सेर बिकने लगा विचार करो कि बीस वर्ष बाद के पूर्व अन्न 40 सेर का बिकता था अब उसका पंचमांश क्यों हो गया?''

भारत में अकाल और हैजा अँगरेजी राज की देन है - इस बात पर जोर देते हुए भारतेन्दु ने 18 मई 1874 की 'कवि वचन सुधा' में लिखा, ''अब तो प्रतिवर्ष में कहीं न कहीं दुष्काल पड़ा ही रहता है मुख्य करके अँगरेजी राज में इसका घर है और बहुधा ऐसा सुनने में आया है कि विसूचिका रोग जो अब संपूर्ण भारत खंड में छा रहा है, अँगरेजों के राज के आरंभ से इसका प्रारंभ हुआ है।'' अकाल और हैजा का संबंध अँगरेज हाकिमों के लूट से जोड़ते हुए उन्होंने आगे लिखा, ''जब अँगरेज विलायत से आते हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बनकर जाते हैं..... इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अँगरेज ही हैं।'' 'भारतदुर्दशा' में भारतेन्दु ने भारत दुर्दैव से कहलाया है -

मरी बुलाऊं देस उजाडूं, महँगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊं, धन है मुझको धन्न।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस जानो जी।

यह भारत दुर्दैव कौन है - यह जानने के लिए 'कवि वचन सुधा' की अकाल-संबंधी टिप्पणियों पर एक नजर दौड़ा लेना काफी है। अँगरेजी राज में 1800 ई. से 1825 तक पाँच अकाल पड़े, 1825 से 1850 तक दो, 1851 से 1875 तक छह और 1876 से 1900 तक अट्ठारह। सरकारी आँकड़ा के अनुसार 1854 से 1901 तक अकाल में मरने वालों की संख्या थी 2 करोड़ 88 लाख 25 हजार। सन 1901 में डिग्बी ने हिसाब लगाकर बताया था कि 19वीं सदी के विगत 30 वर्षों में अकाल की संख्या और विस्तार में वृद्धि पहले सौ वर्षों की अपेक्षा चौगुनी हो गई। सन 1877-78 के भीषण अकाल के बाद सरकार ने एक भारतीय अकाल आयोग का गठन किया था जिसने रिपोर्ट में बताया था कि अकाल का मुख्य कारण है उद्योग धंधों का नष्ट होते जाना, बेकारी और बेरोजगारी का बढ़ना और बड़ी से बड़ी संख्या में आबादी का खेती पर निर्भर होते जाना। अफसरों की तनख्वाह, पेन्शन, युद्ध के खर्च, लगान, चुंगी और टैक्स-हजारों उपायों से भारत की दौलत की लूट ऊपर से। सन 1901 में दादा भाई नौरोजी ने इंग्लैण्ड की एक सभा में व्याख्यान देते हुए कहा था कि महमूद गजनी ने भारत पर 18 बार हमला किया और उसे लूटा लेकिन जितना तुम एक साल में लूट कर ले जाते हो उतना वह 18 बार में न ले जा सका था। उन्होंने एक जगह लिखा था, ''भारत से प्रतिवर्ष तीन से चार करोड़ पाउंड तक की राशि बाहर जाती है। ऐसा शोषण संसार का कोई भी देश सह नहीं सकता। उसकी उत्पादन की शक्ति घट रही है और वहाँ के लोग लाखों की संख्या में भूख से मर रहे हैं। इस सबकी जिम्मेदारी अँगरेजी राज पर है।'' अकाल कमीशन ने समस्या के समाधान के बतौर खेती के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के उद्योगों और धंधों को प्रोत्साहित करने का सुझाव दिया था। अँगरेजी राज महाजनी पूँजी के दौर के साम्राज्यवाद की राह पर चल रहा था, उसकी रुचि भारतीय उद्योग-धंधों के विकास में क्यों होती। एक ओर उन्होंने भारत के माल पर चुंगी और टैक्स लगाकर, कानून बनाकर इंग्लैण्ड में भारतीय माल के व्यापार को रोका जिससे यहाँ के उद्योग-धंधे चौपट हुए, दूसरी ओर भारत में विलायती माल खपाना शुरू किया। भारतेन्दु ने अँगरेजी राज की इस दुहरी चाल को उलट देने के लिए एक ओर विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और दूसरी ओर देशी वस्तुओं के व्यवहार का नारा दिया।

23 मार्च 1874 की 'कवि वचन सुधा' में उन्होंने लोगों से स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार की

अपील की थी और यह ऐतिहासिक प्रतिज्ञा पत्र छपाया था ''हम लोग सर्वान्तर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिन्दुस्तान ही का बना कपड़ा पहिरेंगे हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के बाद में अवश्य उद्योग करेंगे।'' भारतेन्दु ने इस प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर कराने का जो अभियान शुरू किया उसका न केवल आधुनिक साहित्य वरन आधुनिक भारत के इतिहास में भी ऐतिहासिक और क्रांतिकारी महत्व है।

रामविलास शर्मा के शब्दों में, ''हिंदुस्तान के स्वाधीनता संग्राम में यह प्रतिज्ञापत्र स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।'' उन्होंने लिखा है, ''हिंदीभाषी जनता इस बात पर गर्व कर सकती है कि उसके नव जागरण के वैतालिक हरिश्चंद्र ने चौबीस वर्ष की अवस्था में स्वदेशी के व्यवहार की यह गंभीर प्रतिज्ञा की थी। उस दिन तरुण हरिश्चंद्र ने न केवल हिन्द प्रदेश के लिए वरन समूचे भारत के लिए नए युग का द्वार खोल दिया था। उस दिन राष्ट्रीय स्वाधीनता के पावन उद्देश्य से हिंदी साहित्य का अटूट गठबंधन हो गया था। उस दिन हरिश्चंद्र की कलम से भारतीय जनता ने अँगरेजी राज के नाश का वारंट लिख दिया था।''

इस प्रतिज्ञा पत्र से पहले 8 फरवरी 1874 की 'कवि वचन सुधा' में उन्होंने गुहार लगाई, ''अब भी हम लोगों को कला-कौशल्य की ओर ध्यान देना चाहिए।'' उन्हें पता था कि ''अभी यहाँ के व्यापारियों में इतना सामर्थ्य नहीं है कि अँगरेजों के समान लोहा, पीतल इत्यादि मूल्यवान पदार्थ लेकर मट्टी के वस्तु तक बनावैं''। इसलिए केवल कुछ लोगों के प्रयास से सफलता प्राप्त नहीं होगी बल्कि देश भर के व्यापारियों को एकजुट होना होगा, ''जब तक देश भर के व्यापारी इस विषय में उद्योग न करेंगे तब तक कार्य सिद्ध भली भाँति नहीं हो सकता। जिस लिए केवल इतने ही से एतद्देशीय वस्त्र आदि की वृद्धि होनी कठिन है और अँगरेजों के समान वस्तु तैयार करना बिना सबों की सहायता के नहीं हो सकता।'' उन्होंने युवाओं को अँगरेजी पढ़कर विलायत में जाकर पश्चिमी कौशल की शिक्षा प्राप्त करने की सलाह दी ताकि वे अपने देश में लौटकर मशीनी उत्पादन के द्वारा गरीबी और अभाव को दूर करने में लग जाएँ -

जानि सकैं सब कछु सबहि विविध कला के भेद।
बनै वस्तु कल की इतै मिटै दीनता खेद।।
अंगरेजी पहिले पढ़ै पुनि विलायतहि जाय।
या विद्या को भेद सब तो कछु ताहि लखाय।।

भारतेन्दु ने उसी अग्रलेख में लिखा है कि अँगरेजों ने हमारा ध्यान केवल अँगरेजी भाषा की ओर खींचा; हम उसी पर महारत हासिल करने में लग गए और कला-कौशल की ओर ध्यान नहीं दिया। जब अकाल पर अकाल पड़ने लगे तब समझ में आया कि धोखा हो गया। 16 फरवरी 1874 की 'कवि वचन सुधा' में भारतेन्दु ने लिखा, ''जाने को तो यहाँ से तत्व खिंचकर जाता है और आने के समय शीशा खिलौना और कलम पिन्सिल आती है। बड़े-बड़े एम.ए. और बी.ए. अब इस दुर्भिक्ष में किस काम आवैंगे।'' अँगरेजी भाषा और बी.ए.एम.ए. की डिग्री के भरोसे मत रहो, हाथ के व्यापार सीखो, यही काम आएगा, ''हे देशवासियो तुम भी इस निद्रा से चौंको इनके न्याय के भरोसे मत फूले रहो। ये विद्या कुछ काम न आवैगी यदि तुम हाथ के व्यापार सीखो तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा नहीं तो अंत में यहाँ का सब धन विलायत चला जाएगा तुम मुँह बाए रह जाओगे।''

वे विज्ञान और तकनीक का महत्व जानते थे।

बायकाट की धुन में मशीनों के सदुपयोग से ही बगावत कर बैठें, ऐसे कूपमंडूक राष्ट्रवादी वे न थे। उन्होंने 9 मार्च 1874 की 'कवि वचन सुधा' में विलायत में विज्ञान की उन्नति की ओर ध्यान खींचते हुए लिखा था, ''एक लक्ष बइलर हैं, भाप के यंत्र हैं और एक एक की शक्ति 40 घोड़ों की है। एक घोड़े की शक्ति आठ मनुष्यों के बराबर है तो इस हिसाब से चालीस लाख घोड़े अर्थात तीन करोड़ बीस लाख मनुष्यों का काम इन यंत्रों के द्वारा होता है। मनुष्य तो काम करते-करते थक जाते हैं पर ये यंत्र कभी नहीं थकते और मनुष्यों के समान चार आना आठ आना रोज नहीं देना पड़ता केवल इनमें अग्नि प्रदीप करने से चलने लगते हैं... ....परदेश के कला कौशल्य ने इस देश पर चढ़ाई किया ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था।'' इस चढ़ाई का जवाब यही हो सकता था कि भारत के लोग भी पश्चिम के इस कला-कौशल्य की शिक्षा प्राप्त करें और देश में स्वदेशी उद्योग-धंधों के विकास में हाथ लगाएँ। उन्होंने देश के धनी और विचारवान लोगों को बाहर से 'भाप के यंत्र' मँगाने और धातुओं की खानों का शोधन करने की राय दी थी।

30 अप्रैल 1871 की 'कवि वचन सुधा' में भारतेन्दु ने अपनी हरिद्वार यात्रा का विवरण छपाया था जिसमें रुड़की के कारखाने का वर्णन बड़े उत्साह से किया था, ''रुड़की शहर अँगरेजों का बसाया हुआ है। इसमें.....एक तो शिल्प विद्या का बड़ा कारखाना है जिसमें जलचक्की पवनचक्की और भी कई बड़े-बड़े चक्र अनवर्त चक्र में सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, मंगल आदि ग्रहों की भाँति फिरा करते हैं और बड़ी-बड़ी धरन ऐसी सहज में चिर जाती हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। बड़े-बड़े लोहे के खंभे एक क्षण में ढल जाते हैं और सैकड़ों मन आटा घड़ी भर में पिस जाता है।'' इससे भी अधिक विस्तृत ब्यौरेवार सजीव वर्णन गंगानहर का है, ''पुल के ऊपर से तो नहर बहती है और नीचे से नदी बहती है।.... इसके देखने से शिल्प विद्या का बल और अँगरेजों का चातुर्य और द्रव्य का व्यय प्रगट होता है। न जाने वह पुल कितना दृढ़ बना है कि उस पर से अनवर्त कई लाख मन वरन कई करोड़ मन जल बहा करता है और वह तनिक नहीं हिलता। स्थल में जल कर रक्खा है। और स्थानों में पुल के नीचे से नाव चलती है यहाँ पुल के ऊपर नाव चलती है और उसके दोनों ओर गाड़ी जाने का मार्ग है और उसके परले सिरे पर चूने के सिंह बहुत ही बड़े-बड़े बने हैं।'' अगले दो परिच्छेदों में और भी सूक्ष्म ब्यौरों के साथ ऐसा सजीव वर्णन किया है कि विश्वास ही नहीं होता कि ये गद्यपंक्तियाँ राधाकृष्ण के रूप-शृंगार का सरस नखशिख चित्रण करने वाले कवि ने लिखी हैं। इससे भारतेन्दु की आधुनिक संवेदना और रुचि के विस्तार का पता चलता है।

19वीं सदी में अँगरेज संस्कृत और अरबी-फारसी के स्कूल-कालेज खोलने में बड़े उदार थे और इंजीनियरिंग या पोलीटेक्निक कालेज की माँग उठने पर भी कान में तेल डाले पड़े रहते थे। भारतेन्दु स्वयं इन पुरानी भाषाओं के विद्वान और प्रेमी थे, इसके बावजूद वे संस्कृत या अरबी-फारसी के बजाय शिल्प विद्या की शिक्षा को देश के लिए उपयोगी मानते थे। 3 दिसंबर 1872 की 'कवि वचन सुधा' में उन्होंने लिखा, ''सय्यद अहमद खाँ मुसलमानों को अरबी पढ़ाकर क्या करेंगे कला सिखावैं। अनेक (मिमोरियल फंड) चंदे होते हैं अनेक बड़े-बड़े दाता वर्तमान हैं तथा शिल्प विद्या की कोई शाला नहीं है? हिंदू निश्चय रखैं कि जब आत्मरक्षा का समय आवैगा तब बी.ए. होना या दाढ़ी हिलाकर अरबी छाँटना या संस्कृत बूंकना एक काम न आवैगा उस समय केवल यही शिल्प विद्या तुम्हारा घर बचावैगी।'' रामशंकर शर्मा ने उनकी संक्षिप्त जीवनी में उनकी जिन चार इच्छाओं का उल्लेख किया है उनमें तीसरी इच्छा है - शुद्ध हिन्दी का विश्वविद्यालय स्थापित करना और चौथी इच्छा है हिंदी प्रदेश में इंजीनियरिंग कालेज खोलना (''एक शिल्पकला का पश्चिमोत्तर देश में कालिज करना'')। कौन जाने, भारतेन्दु की यही इच्छा मालवीय जी द्वारा बनारस हिंदू

विश्वविद्यालय की स्थापना (1916) में पूरी हुई। कहना न होगा कि मालवीय जी का भारतेन्दुयुगीन साहित्यकारों से घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनके द्वारा स्थापित इस विश्वविद्यालय का एक ध्येय यह था, ''आवश्यक प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ साथ विज्ञान, शिल्पादि कलाकौशल तथा व्यवसाय संबंधी ऐसे ज्ञान की वृद्धि जिससे देशीय व्यवसाय तथा धंधों की उन्नति हो।''

भारतेन्दु ने देश में और खासतौर पर हिंदी प्रदेश में औद्योगिक (कला-कौशल्य या शिल्पादि) शिक्षा प्रचार पर बल दिया और साथ ही वह चाहते थे कि यह शिक्षा हिंदी माध्यम से हो। उन्हें यह स्वीकार न था कि हिंदी माध्यम से विज्ञान की पढ़ाई नहीं हो सकती या हिंदी में विज्ञान की पुस्तकें नहीं हो सकतीं। उन्होंने 29 सितंबर 1873 की 'कवि वचन सुधा' में लिखा था, ''बहुत लोग गाल बजाकर कहते हैं कि हिंदी हो जाने से विज्ञान के पढ़ने-पढ़ाने में विघ्न हो जाएगा क्योंकि हिंदी भाषा में इतने थोड़े शब्द हैं कि वैज्ञानी भावना उसके द्वारा प्रकाश नहीं हो सकती है पर हम उसका यही उत्तर देते हैं कि कोई बात बिना युक्ति के प्रामाणिक नहीं हो सकती हिन्दी के शत्रु बरबस यह भी कह सकते हैं कि इस संसार में ऐसे भी मनुष्य हो सकते हैं जिन्ह के चार सींग होते हैं पर इसको बुद्धिमान न मानेगा क्योंकि इसका कुछ प्रमाण नहीं है पर उनके इस कहने पर भी हिंदी में वैज्ञानी शिक्षा नहीं हो सकती है कोई नहीं मानेगा जब तक कि अपने साध्य के लिए प्रबल प्रमाण न देंगे यों तो अपनी कलम है और अपना कागज।'' उन्होंने बनारस संस्कृत कालेज के गणित अध्यापक पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र से त्रिकोणमिति पर एक पुस्तक लिखवाई थी और उसकी समीक्षा भी लिखी थी। 'कवि वचन सुधा' के 17 सितंबर 1872 के अंक में शीतला प्रसाद का एक लेख छपा है, ''यूरपदेश के नवीन विद्वानों के मत के अनुसार इंद्री और उनके विषयों का वर्णन।'' वे हिंदी में विधि या कानून की एक पत्रिका 'नीतिप्रकाश' नाम से निकालना चाहते थे लेकिन पर्याप्त ग्राहक न मिलने से योजना ठप हो गई। 6 सितंबर 1872 के अंक में एक विज्ञापन से पता चलता है कि वे 'कासिद' नाम का उर्दू साप्ताहिक भी निकालना चाहते थे; शायद ग्राहकों की कमी से वह भी नहीं निकला।

इसी प्रकार 19 जनवरी 1874 के अंक में उन्होंने कुरान शरीफ के हिंदी अनुवाद का एक विज्ञापन छपाया - ''कुरान शरीफ अर्थात मुसलमानों के मन की पवित्र धर्म पुस्तक हिन्दी भाषा में। इस बड़े ग्रंथ को मैंने बड़े परिश्रम से हिंदी भाषा में अनुवाद किया है और अब इसको छापने का भी विचार है परन्तु बड़ा ग्रंथ है और व्यय विशेष है इससे यह इच्छा की है कि पहिले 100 ग्राहक ठहरा कर तब छापना आरंभ करूँ....'' भारतेन्दु का हृदय अत्यंत उदार था। उसमें देश की चिन्ता के आगे किसी प्रकार की धार्मिक-सांप्रदायिक या आंचलिक या प्रांतीय संकीर्णता के लिए स्थान न था। 2 अक्टूबर 1872 की 'कवि वचन सुधा' में उन्होंने लोगों से खानदेश के बाढ़ पीड़ितों की सहायता करने की अपील करते हुए एक इश्तिहार छपाया -

इश्तिहार

'दैव कोप'

''हम अपने दयालु ग्राहकों की दृष्टि इधर दिखलाना चाहते हैं वरन विनय करते हैं कि वे लोग इस भारतवर्ष की परम विपत्ति के यथाशक्ति सहायक हों।

दक्षिण में खानदेश नामक प्रांत और कई गाँव में ऐसी वर्षा हुई कि गाँव का गाँव वरंच देश का देश बह गया है और वहाँ के लोग अन्न, वस्त्र और सब वस्तुओं से हीन होकर परम दीन हो गए हैं और उनकी दशा स्मरण करते नेत्रों में जल भर आता है, कई सहस्र मनुष्य एक संग नाश हो गए, घर गिर पड़े, अन्न वस्त्र धन सब बह गया, केवल ईश्वर ने कृपा करके जिनके प्राण बचाए हैं वे निरवलंब अनाथों की भाँति रोते फिरते हैं। इससे हम आशा करते हैं कि आप लोग इस पत्र के पढ़ते

ही उन लोगों की यथाशक्ति सहायता करें, द्रव्य चाहे कवि वचन सुधा संपादक के पास भेज दीजिए वा बंबई में इंदु प्रकाश के संपादक के पास भेज दीजिए या अपने किसी दक्षिणी मित्र द्वारा भेज दीजिए। उन लोगों की सहायता के चंदे में पहुँच जाएगा।'' भारतेन्दु ने इस विज्ञापन के जरिये साहित्य, पत्रकारिता और देशसेवा तीनों को एक जगह मिला दिया था इसीलिए रामविलास जी ने इसे 'हिंदी साहित्य के इतिहास में एक स्मरणीय घटना' की संज्ञा दी थी।

'कवि वचन सुधा' खंड 2, अंक 22 में प्रकाशित लखनऊ यात्रा में उन्होंने देखा कि ''बेदमुश्क के हौज में गोरे मूतते हैं।..... जहाँ मोती लुटते थे वहाँ धूल उड़ती है।'' गोरे तो गैर हैं, उनका क्या बुरा मानना लेकिन ''यहाँ के हिंदू रईस धनिक लोग असभ्य हैं और पुरानी बातें उनके सिर में भरी हैं। मुझसे जो मिला उसने मेरी आमदनी गाँव रुपया पहिले पूछा और नाम पीछे।'' वृत्तांत के अंत में पाठकों के इस 'चिरानुगत यात्री' ने प्रार्थना की, ''ईश्वर यहाँ के लोगों को विद्या और प्रकाश दें और पुरानी बातें ध्यान से निकालैं।'' विद्या के प्रकाश और पुरानी बातों की सफाई के लिए जरूरी था कि स्त्री पुरुष सबमें शिक्षा का प्रसार हो। 3 नवंबर 1873 के अंक में हिंदी प्रदेश की उन्नति के लिए 'स्त्री शिक्षा' का महत्व बताते हुए कहा गया था, ''यह बात तो सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी जब तक कि यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी, क्योंकि यदि पुरुष विद्वान और पंडित होवेंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्खा होंगी तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह ही होगा।'' यह विचार 'कवि वचन सुधा' के आदर्श-नारि नर सम होंहि - के सर्वथा अनुरूप था।

'कवि वचन सुधा' में भारतेन्दु ने एक विज्ञापन के द्वारा फ्रांस में 'जो युद्ध हुआ और हो रहा है' उस पर नाटक लिखने पर 400 रुपये पुरस्कार देने की घोषणा की। उसके तीन नियम थे; 1. पुस्तक वीर रस अंगी होगा और करुणा और रौद्र उसके अंगी होंगे, 2. इसके पढ़ने से युद्ध का आद्योपांत सब वृत्तांत जाना जाए कि युद्ध कब और क्यों आरंभ हुआ और कब तक रहा और इसमें क्या क्या हुआ। तीसरा नियम विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है, 3. ''इसका फल यह हो कि पुस्तक पढ़ने से मनुष्य संधि और विग्रह इत्यादि नीति में और युद्ध कर्म में चतुर हो जाय और 200 पृष्ठ से न्यून न हो।'' वे लोगों को साहित्य के माध्यम से संधि-विग्रह की नीति और युद्ध में चतुर बनाना चाहते थे, आखिर क्यों? यहाँ के लोगों की नीति-कुशलता और युद्ध चातुरी का फ्रांस में तो कोई उपयोग था नहीं; भारत में जरूर हो सकता था। 30 दिसंबर, 1872 के अंक में भारतेन्दु ने एक पते की बात यह कही थी कि अँगरेज भारतीयों को शिल्पादि कला-कौशल की शिक्षा इसलिए नहीं देना चाहते कि इससे हिंदुस्तानी भी अँगरेजों जैसी चीजें खुद बनाने लगेंगे, बाहर की चीजें मँगाना बंद हो जाएगा जिससे अँगरेजों को घाटा होगा और दूसरे, विलायती कला-कौशल की शिक्षा पाकर भारतीय अँगरेजों से डरना छोड़ देंगे क्योंकि ''कला में युद्ध-विद्या और शस्त्र निर्माण भी तो हैं।''

भारतेन्दु जब कला-कौशल सीखने की बात कहते हैं तो उनके दिमाग में 'कला के लिए कला' या एक नई विद्या पर अधिकार कर लेने की बात नहीं है वरन उसके द्वारा भारतीयों को स्वाधीनता के मार्ग में योग्य, सक्षम और समर्थ बनाना है। वे देश-दुनिया से बेखबर केवल कविता-नाटक की दुनिया में मस्त रहने वाले जीव न थे। उन्होंने देश-विदेश का इतिहास पढ़ा था। उनकी नजर हमेशा देश-विदेश में चलने वाले संघर्षों पर रहती थी। उपनिवेशवाद और राष्ट्रीय स्वाधीनता के बारे में उनकी सोच-समझ को लेकर जिन्हें शंका हो उन्हें 6 जुलाई 1874 की 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित ये पंक्तियाँ पढ़कर अपना भ्रम दूर कर लेना चाहिए, ''जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वाधीन हुआ वैसे ही भारतवर्ष भी स्वाधीनता लाभ

कर सकता है।'' यह विचार 'कवि वचन सुधा' के आदर्शवाक्य-स्वत्व निज भारत गहै - के सर्वथा अनुरूप है।

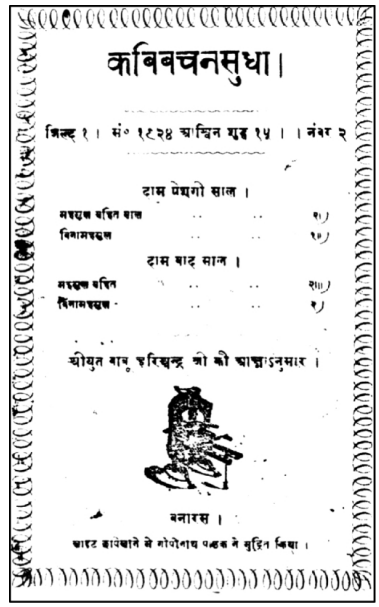

कबिबचनसुधा।

जिल्द १। सं० १९२४ आश्विन शुद्ध १५। । नंबर २

दाम पेशगी साल।

महसूल सहित साल	१॥)
बिनामहसूल	१०)

दाम बाद साल।

महसूल सहित	२॥)
बिनामहसूल	२)

श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र जी की आज्ञाऽनुसार।

बनारस।

लाइट छापेखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित किया।

रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तकों में इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि अँगरेजों का छल-कपट पूर्ण व्यवहार, उनका अविश्वसनीय चरित्र, देशी उद्योग-धंधों का नाश, विदेशी माल का आयात, किसानों, कारीगरों और व्यवसायियों की बदहाली, कानूनी और गैर कानूनी लूट, स्वदेशी आदि तमाम बातें-जिन पर भारतेन्दु ने 'कवि वचन सुधा' में लिखा - अवध की बेगम और बहादुरशाह के गदर के इश्तिहारों में भी मौजूद है। 9 मार्च 1874 की 'कवि वचन सुधा' में भारतेन्दु ने जो बुनकरों, जुलाहों और किसानों के भीख माँगने की बात लिखी है उसे उद्धृत करने के बाद रामविलास जी ने लिखा है, ''ऐसा लगता है कि हरिश्चंद्र ने यह सब बहादुर शाह का इश्तहार पढ़कर लिखा था।'' इसी प्रकार बहादुर शाह के इश्तहार में यह जो घोषणा की गई थी कि बादशाही हुकूमत कायम होने पर अँगरेजों का जाल-फरेब खत्म करके देशी उद्योग धंधों को बढ़ावा दिया जाएगा, ठीक उसी दिशा में भारतेन्दु ने भी स्वदेशी पर जोर दिया था। उनकी भाषा में जो दर्द, तीखापन, व्यंग्य और बेलौसपन है वह गांधी-पूर्व की कांग्रेस के प्रस्तावों के बजाय 1857 के गदर के इश्तिहारों से मेल खाता है। अँगरेजी राज की शोषण नीति और लूट, भारत की आर्थिक बदहाली, अकाल और भुखमरी आदि पर 'कवि वचन सुधा' ने जो कुछ लिखा उसी का व्यवस्थित विश्लेषण दादा भाई नौरोजी और रमेशचन्द्र दत्त आदि के लेखों, पत्रों और भाषणों में मिलता है। स्वदेशी का जो विचार गदर के इश्तिहारों में पहली बार व्यक्त हुआ, 'कवि वचन सुधा' ने पढ़े लिखे लोगों के बीच उसका प्रचार किया और प्रतिज्ञा पत्र के जरिए उसे एक अभियान का रूप दिया और 1905 के बंग भंग के साथ ही और बाद में गांधी जी के नेतृत्व में वह राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का अंग बन गया।

इस तरह देखें तो भारतेन्दु की 'कवि वचन सुधा' हमारे इतिहास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है जो 1857 के गदर को राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के आधुनिक दौर से जोड़ती है। इतना ही नहीं, 150 साल बाद 'कवि वचन सुधा' हमें नवजागरण और स्वाधीनता संग्राम के अधूरे सपनों की याद दिलाती है और हमारी आत्मा को कुरेद कर पूछती है - क्या आजादी के 70 साल बाद भी भारत को अपना खोया हुआ स्वत्व प्राप्त हुआ? क्या हमारी अर्थव्यवस्था पर विदेशी पूँजी और विलायती कंपनियों की जकड़ बंदी खत्म हुई? क्या हमारे देशी उद्योग-धंधे, छोटे व्यापारी और कारीगर खुशहाल हैं? क्या हमारे खेत और किसान, जंगल और आदिवासी खुशहाल हैं? क्या दलितों, अल्पसंख्यकों और स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार समाप्त हो गए? क्या उन्हें आजादी और अधिकार हासिल हुए? अँगरेजों ने जो सांप्रदायिक विभाजन के बीज बोए थे, क्या उनका खात्मा हो गया? 'कवि वचन सुधा' हमें उदारीकरण (उधारीकरण?) और भूमंडलीकरण की मोहनिद्रा से कोंच कर जगाती है और साम्राज्यवाद और कारपोरेट पूँजी के खिलाफ बायकाट और स्वदेशी का हथियार उठाने की प्रेरणा देती है।

'कवि वचन सुधा' एक ऐसा आदर्श पत्र है

जिसमें आर्थर मिलर के शब्दों में देश स्वयं से संवाद करता दिखाई देता है। भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा' के द्वारा पत्रकारिता के आगे एक उज्ज्वल आदर्श स्थापित किया जिसके प्रकाश में स्वाधीनता संग्राम के दौर की पत्रकारिता देशसेवा और आत्म-बलिदान की राह पर उत्साह के साथ आगे बढ़ती रही है। राजसत्ता के कानूनी और गैर कानूनी दमन और आतंक की छाया में भी उसने अपने आदर्श की मशाल बुझने न दी और कई बार तो क्रांतिकारियों और क्रांतिकारी आंदोलनों के लिए अभिभावक, संगी-साथी और हमदर्द की भूमिका का निर्वाह किया। इसके साथ ही जैसे-जैसे पत्रकारिता परवान चढ़ी वैसे वैसे पूँजी के खतरे भी बढ़े।

सन 1925 में वृंदावन हिंदी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर प्रथम संपादक सम्मेलन के सभापति पद से पराडकर जी ने अपने ऐतिहासिक भाषण में कहा था, ''पत्र निकालकर सफलतापूर्वक चलाना बड़े-बड़े धनियों अथवा सुसंघटित कंपनियों के लिए ही संभव होगा। पत्र सर्वांग सुंदर होंगे। आकार बड़े होंगे, छपाई अच्छी होगी, मनोहर, मनोरंजक और ज्ञानवर्धक चित्रों से सुसज्जित होंगे, लेखों में विविधता होगी, कल्पकता होगी, गंभीर गवेषणा की झलक होगी। और मनोहारिणी शक्ति भी होगी, ग्राहकों की संख्या लाखों में गिनी जाएगी। यह सब कुछ होगा पर पत्र प्राणहीन होंगे। पत्रों की नीति देशभक्त, धर्मभक्त अथवा मानवता के उपासक महाप्राण संपादकों की नीति न होगी - इन गुणों से संपन्न लेखक विकृत मस्तिष्क समझे जाएँगे, संपादक की कुर्सी तक उनकी पहुँच भी न होगी। वेतनभोगी संपादक मालिक का काम करेंगे और बड़ी खूबी के साथ करेंगे। वे हम लोगों से अच्छे होंगे। पर आज भी हमें जो स्वतंत्रता प्राप्त है वह उन्हें न होगी।'' दुर्भाग्य से पराडकर जी की भविष्यवाणी आज आश्चर्यजनक रूप से सही प्रमाणित हो रही है।

'कवि वचन सुधा' के विज्ञापन भी मानो स्वदेशी के ज्ञापन थे। आज के पत्रों में विज्ञापनों का वर्चस्व विचार पर बाजार के वर्चस्व की मानो घोषणा करता है। पेड न्यूज मानो संपादकीय व्यूज की दिशा तय करते हैं। 'कवि वचन सुधा' ने अकाल और भुखमरी की खबरें छापीं।

आज के पत्रों को देखिए, समूचे देश में अच्छे दिन आ गए है, सब तरफ मौज है, मस्ती है, सेक्स है, रोमांस है या फिर हत्या है, हिंसा है, लूट है, घपले हैं, घोटाले हैं। गरीब और आम जनता समूचे परिदृश्य से गायब है। पत्र गोया कारपोरेट के सेल्स प्रोमोटी हैं, वे गुड लाइफ का सपना बेचते हैं, ग्रीड इज गुड - उनका मंत्र है, प्रबुद्ध नागरिक के बजाय प्रलुब्ध उपभोक्ता बनाना उनका धर्म है। मूल्यहीनता गोया प्रोफेशनल की कसौटी है तभी तो लक्मे के फैशन शो को कवर करने 400 मीडियाकर्मी पहुँच गए, वहीं बगल में विदर्भ के किसानों की आत्महत्या को कवर करने एक भी नहीं पहुँचा।

एक अनुमान के अनुसार आज के पत्रों में गाँव-देहात और किसानों-मजदूरों की खबरें कुल खबरों का महज 3 प्रतिशत होती हैं। जिन्हें चिंता के केन्द्र में होना चाहिए वे परिधि के बाहर ठेल दिए गए हैं। लेकिन अब भी कुछ धुनी हैं जिनके दिल जनसाधारण के संघर्षों और समस्याओं की धुन पर धड़कते हैं, जो अपने पर्चों में, पुस्तिकाओं में, पत्रिकाओं में 'कवि वचन सुधा' के आदर्शों की धूनी धधकाते रहते हैं। 'कवि वचन सुधा' के प्रकाशन की 150वीं सालगिरह भारतेन्दु के ऐसे ही उत्तराधिकारी लेखकों, पत्रकारों और बुद्धिजीवियों के लिए एक पवित्र राष्ट्रीय संकल्प का पर्व है और उनके लिए भी जो आज की राजनीति के घमासान में 'इंडिया' के मुकाबले 'भारत' का झंडा ऊँचा करने को जूझ रहे हैं।

(लेखक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। लेखक और आलोचक हैं।)

(वागर्थ से साभार)

(Email - awadhesh.pradhan@gmail.com)

“लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने विचारों को जन जन तक पहुँचाने के लिए कई माध्यमों का प्रयोग किया जिसमें एक उनके द्वारा प्रकाशित मराठी समाचार पत्र ‘केसरी’ था। भारत के स्वाधीनता आंदोलन को विस्तार देने और राष्ट्रवादी विचारों के माध्यम से जनता में जागृति लाने के कार्य में ‘केसरी’ समाचार पत्र का बहुत बड़ा योगदान रहा है। गुलामी की जकड़ती जंजीरों के बीच स्वराज्य और स्व-संस्कृति की लोकमान्य तिलक की अवधारणा को और व्यापकता से जन जन तक पहुँचाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस बारे में भी प्रयत्न होने लगे कि तिलक तथा उनके जैसे अन्य राष्ट्रवादी विचारकों के विचारों को हिन्दी भाषा में प्रकाशित और प्रचारित किया जाए। इस दिशा में सार्थक प्रयास पं. माधवराव सप्रे ने सन 1906 में नागपुर में ‘हिन्दी ग्रंथमाला’ के प्रकाशन के रूप में किया।”

हिन्दी ग्रंथमाला और हिन्दी केसरी

■ डा. सच्चिदानंद जोशी

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भारत के स्वाधीनता आंदोलन में उग्र राष्ट्रवादी विचारों के प्रबल संवाहक थे। उन्होंने अपने विचारों को जन जन तक पहुँचाने के लिए कई माध्यमों का प्रयोग किया जिसमें एक उनके द्वारा प्रकाशित मराठी समाचार पत्र ‘केसरी’ था। भारत के स्वाधीनता आंदोलन को विस्तार देने और राष्ट्रवादी विचारों के माध्यम से जनता में जागृति लाने के कार्य में ‘केसरी’ समाचार पत्र का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

तिलक की सिंह गर्जना को स्वर और व्यापकता देने का कार्य केसरी ने निरंतरता के साथ कई वर्षों तक किया। अत्यंत सीमित संसाधन और ब्रिटिश साम्राज्य के निरंतर बढ़ते दबावों के बीच भी केसरी एक सशक्त और प्रभावी जनमाध्यम के रूप में उभरा। इसीलिए श्री गोखले ने एक जगह कहा है, ‘‘जब जनसंचार जैसा शब्द प्रचलित भी नहीं हुआ था तब उसे राजनीतिक महत्व प्रदान करने वाले तिलक पहले भारतीय थे।’’

लेकिन केसरी का प्रकाशन मराठी भाषा में होने के कारण मराठी नहीं जानने वाले बहुसंख्यक लोग उनके विचारों का लाभ लेने से वंचित रह जाते थे। जनसंचार पर अपनी गहरी पकड़ के कारण लोकमान्य तिलक ने इस बात को महसूस किया कि यदि पूरे देश में व्यापकता के साथ अपने विचारों का अलख जगाना है, तो ऐसी भाषा में भी संवाद कायम होना चाहिए जिसे बहुसंख्यक भारतीय समझते हों। केसरी में 10 अप्रैल सन 1888 को भारतीय भाषाओं की महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखा गया था, ‘‘भावी बलशाली और स्वतंत्र हिंदू राष्ट्र में देशी भाषाओं का प्रसार और व्यवहार होना चाहिए।’’ लोकमान्य तिलक का भारतीय भाषाओं और भारतीय संस्कृति के प्रति आग्रह और समर्पण सर्व विदित है। आज भी संस्कृति संरक्षण के लिए प्रमुखता से प्रयोग में लाई जाने वाली कई परंपराएँ लोकमान्य तिलक की ही देन हैं।

यही कारण है कि गुलामी की जकड़ती जंजीरों

के बीच स्वराज्य और स्व-संस्कृति की लोकमान्य तिलक की अवधारणा को और व्यापकता से जन जन तक पहुँचाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस बारे में भी प्रयत्न होने लगे कि तिलक तथा उनके जैसे अन्य राष्ट्रवादी विचारकों के विचारों को हिन्दी भाषा में प्रकाशित और प्रचारित किया जाए। इस दिशा में सार्थक प्रयास पं. माधवराव सप्रे ने सन 1906 में नागपुर में 'हिन्दी ग्रंथमाला' के प्रकाशन के रूप में किया।

हिन्दी ग्रंथ माला

'छत्तीसगढ़ मित्र' के पश्चात सप्रेजी ने हिन्दी ग्रंथमाला का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह पड़ाव 'छत्तीसगढ़ मित्र' के बाद तथा 'हिन्दी केसरी' के पूर्व का है। 'छत्तीसगढ़ मित्र' के बाद के काल में छपाई इत्यादि कार्य देशसेवक प्रेस नागपुर में ही कराया जाता था। इसलिए सप्रेजी का नागपुर और देशसेवक प्रेस से जीवंत सम्पर्क स्थापित था। देशसेवक प्रेस से इसके मालिक पं. माधवराव पाध्ये 'देशसेवक' नाम का साप्ताहिक प्रकाशित किया करते थे।

सप्रेजी देशसेवक प्रेस में दस रुपये महीने की नौकरी पर काम करने लगे। यदि प्रेस की आर्थिक दशा अच्छी होती तो निश्चित ही पाध्ये जी सप्रे जी को इससे अधिक वेतन देते। सप्रेजी 10 रुपये महीने पर काम करने को राजी थे। सप्रेजी ने प्रारंभ ही में पाध्ये जी के सामने यह योजना रखी कि प्रेस का पूरा चार्ज मुझे दिया जाए। अभी मैं 10 रुपये माहवार लूँगा। परंतु जिस तरह प्रेस की आमदनी बढ़ती जाए उसी तरह मेरी तनख्वाह बढ़ाई जाए। पाध्ये जी ने ये शर्त मंजूर कर ली, क्योंकि उनका कोई नुकसान न था। वे सप्रेजी की योग्यता जानते थे और उनसे सम्बन्ध रखना चाहते थे।

सप्रेजी ने अपने अतिविशिष्ट गुणों से प्रेस को कुछ ही समय में अपने वश में कर लिया। इससे देशसेवक प्रेस की दशा धीरे धीरे सुधार पर आने लगी। सप्रेजी प्रेस के कर्मचारियों की छोटी छोटी समस्याओं को सुलझाकर उनमें लगन और मेहनत से कार्य करने की उमंग पैदा कर रहे थे। इससे प्रेस के काम में वृद्धि होने लगी और आमदनी भी बढ़ी। पाध्ये जी ने इसी से खुश होकर सप्रेजी की तनख्वाह बढ़ाई और लाभ का कुछ अंश भी सप्रेजी को दिया जाने लगा।

अभी तक सप्रेजी ने जो कार्य किए थे वे सभी उनकी राष्ट्रवादी विचारधारा पर आधारित थे। पर राजनीतिक बातों से उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं आया था। उनका ज्यादा ध्यान राष्ट्रभाषा की सेवा की ओर ही था। परंतु अब ऐसा समय आ गया था कि इस विषय पर दुर्लक्ष्य करना सप्रेजी के लिए असंभव हो रहा था।

इसी कारण सप्रेजी ने सन 1905 में नागपुर में हिन्दी ग्रंथ प्रकाशक मंडली की स्थापना की। इसका मुख्य उद्देश्य हिन्दी भाषा पढ़ने वालों में देशोन्नति के नूतन विचारों की जागृति करने हेतु आधुनिक तथा उपयोगी विषयों के उन मौलिक ग्रंथों को प्रकाशित करना था। सप्रेजी इस मंडली के व्यवस्थापक बने। उद्देश्यों के अनुसार साहित्य सामग्री एकत्रित होने पर इसे मासिक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का भी विचार मंडली द्वारा स्वीकार किया गया।

हिन्दी ग्रंथ प्रकाशक मंडली और ग्रंथमाला के विषय में आगे विवेचन के पूर्व इसकी स्थापना की पृष्ठभूमि एवं परिदृश्य के बारे में भी थोड़ा विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है।

सन 1900 में काशी की नागरी प्रचारिणी सभा और बिहार में आरा की नागरी प्रचारिणी सभा ने आधुनिक साहित्य-प्रकाशन की ओर सबसे पहले ध्यान दिया था। काशी की सभा के संचालक बाबू श्याम सुंदर दास ने इंडियन प्रेस प्रयाग के मालिक बाबू चिंतामणि घोष के सहयोग से सन 1900 में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया था। यह हिन्दी की पहली आधुनिक ढंग की सचित्र पत्रिका थी। इसमें हिन्दी की दशा एवं हिन्दी के विकास के विषय में समय-समय पर

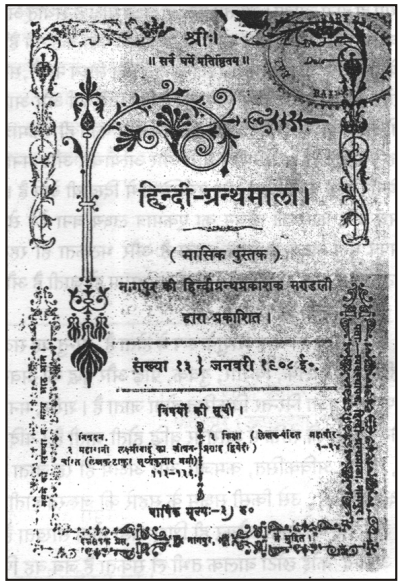

श्रीः।
॥ सर्वे धर्मे प्रतिष्ठितम् ॥
हिन्दी-ग्रन्थमाला।
(मासिक पुस्तक).
नागपुर की हिन्दीग्रन्थप्रकाशक मण्डली
द्वारा प्रकाशित ।
संख्या १३ } जनवरी १९०८ ई०.
विषयों की सूची ।
१ निवेदन.
२ महारानी लक्ष्मीबाई का जीवन-चरित (लेखक-ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा) ११२-१२६.
३ शिक्षा (लेखक-पंडित महावीर-प्रसाद द्विवेदी) १-२४
वार्षिक मूल्य:-२) रु०
मैं मुद्रित ।

संपादकीय टिप्पणियाँ एवं लेख लिखे जाते थे।

उस समय हिन्दी-भाषा को संस्कृत के विद्वान 'भाखा' कहकर उससे घृणा करते थे और इसे पढ़ने में अपनी बेइज्जती समझते थे। अँगरेजी के विद्वानों के मन में हिन्दी के प्रति आदर नहीं था। यह आम धारणा थी कि अँगरेजी पढ़ने और लिखने से सरकारी लोगों में मान और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, आर्थिक लाभ हो जाता है और नौकरी अथवा सम्मान प्राप्त हो जाता है।

ऐसे समय में, बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में अँगरेजी और संस्कृत के जिन विद्वानों ने हिन्दी में ग्रंथ रचना और ग्रंथ प्रकाशन करने और कराने का कार्य प्रारंभ किया, हिन्दी-संसार को ऐसे महानुभावों का सदैव कृतज्ञ रहना चाहिए। पं. माधवराव सप्रे उन्हीं महानुभावों में से एक हैं।

सप्रेजी का विचार था कि हिन्दी में ऐतिहासिक, सामाजिक, जीवन-चरित्र-संबंधी और राजनीतिक ग्रंथ वर्तमान आवश्यकता के अनुरूप निकाले जाने चाहिए। उस समय हिन्दी में ऐसे ग्रंथों का अभाव था। सप्रेजी ने अनुभव किया कि जब तक हिन्दी भाषा में श्रेष्ठ और प्रेरणादायी साहित्य निर्माण नहीं होगा, तब तक देश में स्वदेश प्रेम तथा गौरव के भाव उत्पन्न नहीं होंगे। यह सप्रेजी का दूरदर्शी राष्ट्रवादी सोच था, जिसने राष्ट्रभाषा और राष्ट्र प्रेम दोनों को बढ़ाने में योगदान दिया।

उस समय मराठी में इस प्रकार के साहित्य की रचना हो रही थी। राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करने वाले समर्थ विद्यालय के प्राध्यापक प्रो. विष्णु गोविंद बिजापुरकर कोल्हापुर से एक ग्रंथमाला मासिक के रूप में निकालते थे। पं. विष्णु शास्त्री चिपलूनकर की 'निबंधमाला' भी महाराष्ट्र-साहित्य में क्रांति बीज बो चुकी थी। संभवतः सप्रेजी ने श्री चिपलूनकर से प्रेरणा लेकर 'हिन्दी-ग्रंथमाला' निकालने की योजना बनाई थी।

सन 1905 में हिन्दी ग्रंथ प्रकाशन मंडली नागपुर में बनी जिसमें डा. मुंजे, डा. वासुदेवराव लिमये, लाला भागीरथ प्रसाद, पं. लक्ष्मीधर वाजपेई, पं. जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, पं. कामताप्रसाद गुरु एवं पं. गंगा प्रसाद अग्निहोत्री जैसे हिन्दी के मर्मज्ञ सदस्य थे। 'हिन्दी ग्रंथमाला' मासिक पत्रिका प्रकाशित करने का कार्य मई 1906 से प्रारंभ किया गया।

हिन्दी ग्रंथमाला में (1) भारतवर्ष का इतिहास, (2) अन्य देशों के इतिहास (3) देशी तथा विदेशी प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के जीवन चरित्र (4) ऐतिहासिक नाटक, उपन्यास और आख्यायिका (5) भारतवर्ष के वर्तमान राजनीति सम्बन्धी विषय (6) विज्ञान (7) समालोचना, विषय रखने की घोषणा की गई।

इस ग्रंथमाला के प्रकाशन के संदर्भ में सप्रेजी का विचार स्पष्ट एवं सटीक था, ''जिस देश में हम रहते हैं उसका हित करना भी तो हमारा कर्तव्य है। यदि हमारे साहित्य में यह समाज हित, यह देशहित साधन करने की शक्ति न हो तो वह साहित्य किस काम का? महाराष्ट्र के उदय तथा उसके प्रश्न के समय के साहित्य की तुलना करने से यही बात सिद्ध होती है कि साहित्य और राष्ट्र का घना सम्बन्ध है।''

इस तरह देखा जाए तो हिन्दी ग्रंथ प्रकाशक

मंडली और हिन्दी ग्रंथमाला माधवराव सप्रे के जीवन का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, जहाँ से वास्तव में उनकी राष्ट्रवादी भावना तथा राष्ट्रवादी पत्रकारिता मुखर हुई और उन्होंने सीधे सीधे राष्ट्रीय चेतना जगाने की दिशा में लक्ष्य केन्द्रित कर कार्य प्रारंभ किया। ग्रंथमाला में सप्रेजी ने राष्ट्रीय भावना से पूर्ण लेखों के प्रकाशन के लिए अनवरत परिश्रम किया। 'स्वराज्य', गोखले महोदय के भाषण का अनुवाद, हमारा धन कहाँ जा रहा है, स्वराज्य और सुराज, देश की बातें, भारतवर्ष की उन्नति, साहित्य और स्वातंत्र्य इत्यादि लेखों को प्रकाशित किया।

हिन्दी ग्रंथमाला का आकार रायल आठ पेजी (8'' x 6'') था जो 'छत्तीसगढ़ मित्र' के समान ही था। इसका मूल्य तीन रुपये रखा गया था। यह पुस्तक के रूप में प्रकाशित होती थी ताकि लोग उसे संग्रह करके रख सकें। इस पर मुख पृष्ठ पर संस्कृत वाक्य 'सर्वधर्म प्रतिष्ठित' लिखा रहता था।

प्रथम अंक में सप्रेजी ने हिन्दी साहित्य को दिशा प्रदान करने के लिए एक निबंध लिखा, जिसका शीर्षक था - ''वर्तमान में हिन्दी का साहित्य किस प्रकार का होना चाहिए।'' यह अत्यंत क्रांतिकारी एवं ओजस्वी निबंध था। इस निबंध में उन्होंने तत्कालीन हिन्दी साहित्य के चरित्र का विश्लेषण किया। उन्होंने लिखा कि ''जिस समाज में, जिस देश में हम रहते हैं उसका हित करना भी तो हमारा कर्त्तव्य है। यदि हमारे साहित्य में यह समाज हित, यह देश हित साधन करने की शक्ति न हो तो वह साहित्य किस काम का?'' इसी निबंध में सप्रेजी ने एकाधिक स्थानों पर अपने प्रखर राष्ट्रवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी है। एक स्थान पर वे लिखते हैं, ''सारांश, हिन्दी साहित्य के द्वारा हमारे देश में एक राष्ट्रीयत्व, एक जातीयता के विचारों की जागृति होनी चाहिए, जिससे हम लोग भविष्य में स्वाधीनता का सुख भोगने के पात्र हो जाएँ। इस प्रकार के हिन्दी साहित्य निर्माण करना हमारे आधुनिक साहित्य सेवियों का प्रधान कर्तव्य है।''

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा अनूदित 'स्वाधीनता' ग्रंथ भी हिन्दी ग्रंथमाला में प्रकाशित किया गया, जो जान स्टुअर्ट मिल के पुस्तकाकार निबंध 'आन लिबर्टी' का हिन्दी में अनुवाद था।

इसी तारतम्य में द्विवेदी जी के दूसरे ग्रंथ 'शिक्षा' पर एक उपयोगी निबंध माला कई अंकों में प्रकाशित हुई। सन 1908 के जून से 'अँगरेजी राज्य से हिंदुस्तान का सत्यानाश' शीर्षक लेखमाला प्रारंभ हुई। अँगरेजी में इस लेख माला के मूल लेखक मिस्टर हैंडमेन थे। इसी का अनुवाद इस लेखमाला में प्रकाशित हुआ था।

हिंदी ग्रंथमाला में 'स्वदेशी आंदोलन और बायकाट' शीर्षक एक लंबा निबंध लिखा गया था जो शिक्षित भारतीय जनता को झकझोरने के लिए, नींद से जगाने के लिए लिखा गया था। इसमें भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आने के बाद अँगरेजों द्वारा अपनाई गई राजनीतिक चाल को उजागर करते हुए जनता को सचेत किया गया था। यह अत्यंत महत्वपूर्ण निबंध था, जो स्वदेशी एवं बॉयकॉट के संबंध में लोकमान्य तिलक के विचारों, भाषणों एवं लेखों के आधार पर सप्रेजी ने स्वतंत्र चिंतन कर लिखा था। इसमें कही गई कुछ बातें तो आज भी अक्षरशः सत्य और वर्तमान परिदृश्य पर लागू मालूम होती हैं।

यह निबंध सन 1908 में पुस्तकाकार प्रकाशित होते ही इसे जब्त कर लिया गया।

यह बहुत बड़ा एवं विस्तृत निबंध था जो बंग भंग तथा स्वदेशी आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया था। इसमें स्थान स्थान पर सप्रेजी ने राष्ट्राभिमान को जाग्रत कर आजादी के लिए प्रेरणा देने का प्रयास किया है। इस निबंध में सप्रेजी ने मूल मंत्र दिया, ''स्वदेशी वस्तु का स्वीकार और विदेशी वस्तु का त्याग ये दोनों बातें एक ही हैं। इस यत्न में सफलता प्राप्त करना हमारी शक्ति के बाहर नहीं है।''

ग्रंथमाला के प्रत्येक अंक में तीन या चार से अधिक लेख प्रकाशित नहीं होते थे। 'निबंध संग्रह' नामक एक स्थाई स्तंभ इसमें हुआ करता था। इसके अलावा कुछ कविताएँ, टिप्पणियाँ, हिन्दी भाषा और साहित्य से संबंधित लेख या प्रसिद्ध पुस्तकों के अनुवाद रहते थे। इसके अलावा सबसे महत्वपूर्ण यानी राजनीतिक समाचारों और लेखों को इसमें विशिष्ट स्थान प्राप्त था।

हिन्दी ग्रंथमाला निर्भीक विचारों की पत्रिका थी। सप्रेजी ने कभी नहीं चाहा कि वे अपनी पत्रिका को राजनीति से बचाए रखें। वह सब कुछ स्पष्ट रूप से प्रकाशित करना चाहते थे। वे जनसाधारण में देश के प्रति नई जागृति पैदा करना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने 'स्वदेशी आंदोलन और बायकाट' विस्तृत रूप से संग्रहीत लेखों को प्रकाशित किया ताकि जनता की आँखें खुलें।

सप्रेजी के नेतृत्व में 'हिन्दी ग्रंथमाला' ने उस समय हिंदी साहित्य जगत में 'अनस्थिरता' एवं राष्ट्र को लेकर चल रहे ऐतिहासिक वाक् संग्राम में भी हिस्सा लिया, जिसमें उस समय की अन्य श्रेष्ठ पत्रिकाएँ 'सरस्वती', 'भारत मित्र', 'हिंदी बंगवासी' आदि भी शामिल थीं।

हिन्दी ग्रंथमाला में लोकमान्य तिलक के व्याख्यान भी प्रकाशित करने की योजना थी, परंतु प्रेस एक्ट की धाराओं को लागू करते हुए सरकार ने 1908 में इस संस्था को ही नष्ट कर दिया। उस समय तक हिन्दी ग्रंथमाला अपनी निर्भीकता का डंका पूरे देश में बजा चुकी थी और एक प्रखर राष्ट्रवादी पत्र के रूप में स्थापित हो चुकी थी। हिन्दी ग्रंथमाला को निकालने में प्रारंभ में पं. रामराव चिंचोलकर ने सप्रेजी की सहायता की। लेकिन चिंचोलकर जी का मई 1906 में निधन हो गया। उसके बाद पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी सहायक बने और उन्होंने सप्रेजी को ग्रंथमाला के प्रकाशन में सहायता की। बाबू श्यामसुंदर दास की सलाह पर लक्ष्मीधर वाजपेई, सप्रेजी के पास काम करने काशी से नागपुर गए थे। यह इस बात को सिद्ध करता है कि सप्रेजी की विद्वत्ता और उनके दृढ़ निश्चय का लोहा देश के सभी विद्वान, साहित्यकार और पत्रकार मानने लगे थे।

हिन्दी ग्रंथमाला में उस समय के कई बड़े और नामी लेखकों के लेख छपा करते थे। इनमें आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, कामताप्रसाद गुरु, बाबू श्याम सुंदर दास, श्रीधर पाठक, टहलराम गंगाराम, सैयद अमीर अली, गंगानारायण द्विवेदी, ठाकुर सूर्य आदि शामिल हैं।

जब सप्रेजी ने 'हिन्दी केसरी' का कार्य 1907 में प्रारंभ किया, तब उन्होंने 'हिन्दी ग्रंथमाला' का सम्पूर्ण भार लक्ष्मीधर वाजपेई को सौंप दिया। सप्रेजी को 'हिन्दी केसरी' में छपे लेख 'बाम्ब गोले का रहस्य' के कारण गिरफ्तार कर लिया गया, साथ ही अँगरेजी शासन ने यह भी आदेश निकाला था कि जो भी 'हिन्दी केसरी' अथवा 'हिन्दी ग्रंथमाला' से संबंध रखेगा, उसके रिश्तेदारों को शासकीय नौकरी से निकाल दिया जाएगा और पेंशन पाने वालों की पेंशन बंद कर दी जाएगी। इससे शासकीय सेवा करने वालों का मनोबल टूट गया। अंत में दिसम्बर 1908 में 'हिन्दी ग्रंथमाला' को बंद करने का निर्णय ले लिया गया।

'हिन्दी ग्रंथमाला' हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक नया प्रयोग था। यह पत्रिका 'छत्तीसगढ़ मित्र' से कई बातों में अलग और महत्वपूर्ण थी। सप्रेजी अगर गिरफ्तार न होते तो 'हिन्दी ग्रंथमाला' जो उनका अत्यंत सार्थक प्रयास था, अनवरत जारी रह सकता था। यह पत्र साहित्यिक एवं राजनीतिक निबंधों का मिश्रण था।

'हिन्दी ग्रंथमाला' सप्रे जी का ऐसा प्रयास था जिसने बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में राजनीतिक चेतना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। यह माधवराव सप्रे की राजनीतिक पत्रकारिता का प्रस्थान बिंदु था। यहीं से उनका झुकाव प्रखर राष्ट्रवादी चेतना की ओर हुआ, जो बाद में 'हिन्दी केसरी' के रूप में पल्लवित हुआ।

हिन्दी केसरी

दिसम्बर सन 1905 में श्री गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन बनारस में हुआ। श्री गोपाल कृष्ण गोखले अपनी विद्वत्ता, देशभक्ति, निस्वार्थ भावना, वक्तव्य और कार्यकुशलता के कारण उन दिनों राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान बना चुके थे। उनकी प्रतिभा का लोहा ब्रिटिश सरकार भी मानती थी।

इसी अधिवेशन के पूर्व अक्टूबर 1905 में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल का अव्यावहारिक विभाजन कर दिया गया। यह भारतीय इतिहास का एक ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण कदम था, जिसके दुष्परिणाम आज भी भारत भोग रहा है। ऐसे अविवेकपूर्ण कदम से भारतीयों का गुस्सा फूटना स्वाभाविक था। बंगाल के विभाजन के विरोध में देशव्यापी प्रदर्शन हुए। इसी पृष्ठभूमि में बनारस में दिसम्बर 1905 में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। स्वाभाविक ही था कि बंगाल के विभाजन की छाया इस अधिवेशन पर भी पड़े। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी सहित कई नेताओं ने विभाजन पर आवेशपूर्ण मत रखे। एक प्रस्ताव 'स्वदेशी' पर भी पारित किया गया। लेकिन लोकमान्य तिलक सहित कई नेताओं का यह मत था कि अब सहिष्णुता से काम नहीं चलने वाला है। अँगरेजी हुकूमत के इस कदम का तीखा प्रतिकार किया जाना चाहिए। लाल, बाल और पाल की तिकड़ी ने उस अधिवेशन में जो मत रखा वह कांग्रेस के परंपरावादी रुख से भिन्न था। अधिवेशन में उन्हें अपने मतानुसार प्रस्ताव पास कराने में सफलता तो नहीं मिली लेकिन इससे उनके बहुत सारे अनुयायी बन गए।

नागपुर से जो प्रतिनिधि मंडल इस अधिवेशन में गया था, उसमें सप्रेजी भी सदस्य थे। इसके पहले से ही सप्रेजी पर लोकमान्य तिलक के विचारों और कार्यों का गहरा प्रभाव पड़ने लगा था। बनारस अधिवेशन में सप्रेजी की तिलक जी से हुई भेंट ने इस प्रभाव को और अधिक गहरा तथा चिरस्थाई बना दिया। इसी भेंट के दौरान सप्रेजी ने तिलक जी के कार्यों का हिन्दी क्षेत्रों में प्रचार करने की इच्छा प्रकट की। उस समय तक कोलकाता से निकलने वाला 'हितवार्ता' ही एकमात्र ऐसा पत्र था जो तिलक जी के विचारों का प्रचार हिन्दी भाषी क्षेत्रों में कर रहा था। इसके सम्पादक बाबूराव विष्णु पराडकर थे। इसका प्रचार भी बंगाल-बिहार तक ही सीमित रहता था। मध्यप्रांत और उत्तरप्रदेश जैसा प्रमुख हिन्दी भाषी क्षेत्र अभी भी तिलक जी के राष्ट्रवादी विचारों के ज्ञान से वंचित रह जाता था।

इसी बात को ध्यान में रखते हुए 'केसरी', जो मराठी में निकलता था, के विचारों का अनुवाद कर 'हिन्दी केसरी' नामक पत्र निकालने की योजना तिलक जी के सामने रखी गई।

आरंभ में तिलक जी इसके विरुद्ध थे। वे केसरी से अनूदित लेखों को छाप देने के पक्ष में नहीं थे। वे स्वतंत्र रूप से लेख छापने के पक्ष में थे। उनका कथन था कि मराठी केसरी में स्थानीय विषयों की भी चर्चा रहती है, जिसका उपयोग अन्य हिन्दी भाषी लोगों के लिए उतना नहीं होगा। वे मानते थे कि पत्र तभी लोकप्रिय होगा जब उस क्षेत्र विशेष की स्थानीय बातों को प्रभावी ढंग से लिखने वाले लेखक भी इससे जुड़ें।

सप्रेजी ने आश्वासन दिया कि 'हिन्दी केसरी' केवल मराठी केसरी के विचारों का अनुवाद ही नहीं छापेगा, बल्कि देश की अन्य समस्याओं तथा घटनाओं का भी समावेश उसमें करेगा। सप्रेजी द्वारा यह आश्वासन दिए जाने के बाद तिलक जी ने 'हिन्दी केसरी' के प्रकाशन पर सहमति दी।

सन 1907 में सप्रेजी ने नागपुर में 'हिन्दी केसरी' के प्रकाशन के लिए एक समिति बनाई जिसमें डा. मुंजे, डा. लिमये जैसे लोग रखे गए जो तिलक के विचारों के कट्टर समर्थक थे। डा. बालकृष्ण मुंजे तो तिलक जी के साथ बंगाल में स्वदेशी प्रचार के लिए भ्रमण कर चुके थे। एक कम्पनी बनाई गई जिसके तीन तीन सौ रुपये के

शेयर डा. मुंजे, नरसिंह दास चांडक और माधवराव सप्रे ने खरीदे। इन शेयरों के माध्यम से वह राशि उपलब्ध हो गई जिससे काम प्रारंभ किया जा सकता था।

'हिन्दी केसरी' के व्यापक प्रचार प्रसार और उसकी सुव्यवस्थाओं के लिए कार्यकर्ताओं का छोटा-सा परिवार बनाया गया जिसमें सप्रेजी के अलावा पं. जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, पं. लक्ष्मीधर वाजपेई, पं. लल्ली प्रसाद पांडेय और पं. सिद्धिनाथ दीक्षित जैसे साहित्य मर्मज्ञ तथा निष्ठावान राष्ट्रवादी लोग थे। जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल तो मुम्बई के प्रतिष्ठित समाचार पत्र 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के सम्पादक का स्थाई पद छोड़कर सप्रेजी के आग्रह पर नागपुर आए थे। 'हिन्दी केसरी' में सम्पादक के रूप में माधवराव सप्रे का नाम छपता था, परंतु प्रमुख सम्पादकीय सहयोगी शुक्ल जी थे। पं. सिद्धिनाथ दीक्षित प्रबंधन का कार्य देखते थे।

'हिन्दी केसरी' का प्रथम अंक 13 अप्रैल 1907 को बाजार में आया। पहले अंक की 3000 प्रतियाँ मुद्रित करवाई गई थीं।

'हिन्दी केसरी' का उददे्श्य सप्रेजी ने पहले ही अंक में स्पष्ट कर दिया था। सप्रेजी ने लिखा था - ''विज्ञापन से विदित हुआ होगा कि हमने वर्तमान समय के एक राजनीतिक वीर और तत्ववेत्ता के सार्वजनिक विचार जो अब तक केवल मराठी में प्रकट होते थे, हिन्दी में प्रकाशित करने का निश्चय किया है। अब केवल उन्हीं बातों का विचार किया जाए कि किन उपायों से सरकार की वर्तमान राजनीति और शासन पद्धति में हम लोग सुखकारक परिवर्तन करा सकेंगे। किन उपायों से आर्यमाता राजनीतिक दासत्व से मुक्त होकर स्वराज्य का सुखकारी मुकुट अपने मस्तक पर धारण करेगी। बस इन्हीं बातों की शिक्षा इस समय हमें दरकार है। यदि 'हिन्दी केसरी' यह काम पूरा कर सकेगा तो समझना चाहिए कि उसके जीवन की सफलता हुई।''

इसके मुख पृष्ठ पर केसरी (मराठी) के मुखपृष्ठ पर छपने वाले पं. जगन्नाथ के संस्कृत श्लोक का हिन्दी में अनुवाद जो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया था, छापा जाता था। वह इस प्रकार है -

स्वामी कुंजर वृंद के इस घने कान्तार के भीतर
रे एक क्षण भी न तू ठहरना उन्माद में आकर।
हाथी जान, शिला विदीर्ण करके पैने नखों से निरी,
सोता है गिरि-गर्भ में, यह यहीं भीमाकृति केसरी।।

इसमें भारत को सोते हुए केसरी की उपमा देकर पाठकों को उसके जागने पर उसकी उग्रता और शौर्य का विश्वास दिलाया गया था। इसके साथ ही मुखपृष्ठ पर भारत माता का चित्र छपता था।

'हिन्दी केसरी' साप्ताहिक था जिसका आकार डबल क्राउन चौपेजी 9'' x 15'' था। यह स्वदेशी कागज और स्याही से छपता था। वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित दो रुपये था।

'हिन्दी केसरी' के प्रथम पृष्ठ पर विज्ञापन की छपाई की दरें भी प्रकाशित की जाती थीं। यह दर एक माह के लिए प्रति पंक्ति चार आना थी। विज्ञापन उधारी में नहीं छापे जाते थे। साथ ही ग्राहकों के लिए नियम भी पहले पेज पर होते थे। शहर में एक प्रति का मूल्य एक आना तथा बाहर के लोगों को एक प्रति बिना मूल्य यह भी छपा होता था। यह इस बात का द्योतक है कि राष्ट्रवादी विचार के प्रसार के लिए यह पत्र बाहर के लोगों को निःशुल्क भी दिया जा रहा था।

'हिन्दी केसरी' ने तिलक की विचारधारा का प्रचार प्रसार हिन्दी क्षेत्रों में जमकर किया। फलस्वरूप हुकूमत की आँखों में 'हिन्दी केसरी' गड़ने लगा। सरकार की इच्छा यह थी कि या तो 'हिन्दी केसरी' अपनी नीति बदल दे या फिर जन्म के वर्ष में ही समाप्त हो जाए। परंतु 'हिन्दी केसरी', केसरी (सिंह) की तरह दहाड़ता ही रहा। श्री लल्लीप्रसाद पांडे ने अपने संस्मरण में लिखा है कि ''एक दिन दफ्तर से वहाँ के बड़े डाकघर का, एक युवक क्लर्क से यह कहकर ग्राहकों की

फेहरिस्त माँग ले गया कि डाकघर में ग्राहकों के नामों की फेहरिस्त रहेगी तो भेजते समय ग्राहकों के ठिकाने छाँटने में सहूलियत रहेगी। इसके कुछ दिनों बाद उत्तरप्रदेश के ग्राहकों के पत्र दफ्तर में आने लगे कि उनके पास 'हिन्दी केसरी' न भेजा जाए। उनको पुलिस धमकाती है कि 'हिन्दी केसरी' मँगाना बंद न करोगे तो झूठे मामले में फँसा देंगे। पराधीन देश में इस तरह के उत्पात होना साधारण बात है।

सरस्वती के मई 1907 के अंक में हिन्दी केसरी का वर्णन कुछ इस प्रकार किया गया, ''हिन्दी केसरी निकल आया। अच्छा निकला। पहिले पृष्ठ पर मातृभूमि का चित्र है। सिर पर मुकुट है। एक सिंह इधर एक उधर अपना एक पंजा मुकुट पर रखे है। ऊपर वंदेमातरम् छपा है। ब्लाक बहुत अच्छा बना है। भाव से भरा है। आशा है इससे वही काम होगा जो तिलक महाशय के मराठी (केसरी) पत्र में हो रहा है। इसे निकालने का सारा पुण्य पं. माधवराव सप्रे बी.ए. का है। महाराष्ट्री होकर हिन्दी भाषा पर आपके अखंड और अकृत्रिम प्रेम को देखकर उन लोगों को लज्जित होना चाहिए, जो हिन्दी में एक सतर भी नहीं लिख सकते अथवा लिखना चाहते।''

सप्रे जी ने प्रथम अंक के सम्पादकीय में जो विचार व्यक्त किए, उनकी भी खूब प्रशंसा हुई। सरस्वती के मई, 1907 के अंक में ही लिखा गया कि ''ये विचार विचारपूर्वक लिखे गए हैं।'' यह लोगों के मन में अपनी पैठ बना रहा था। 'हिन्दी केसरी' का स्वर और चरित्र ही ऐसा था कि लोग इसे पढ़ना नहीं चूकते थे। राष्ट्रवाद और देशभक्ति, स्वाभिमान और देशाभिमान इसकी खबरों के प्रमुख विषय थे।

'हिन्दी केसरी' में पूरे देश के स्वतंत्रता संग्राम के समाचारों का समावेश रहता था। इससे पाठकों को आंदोलन की गतिविधियों, उसके फैलाव और आम जनता के योगदान की जानकारी मिलती रहती थी। सप्रेजी, तिलकजी के उन निर्देशों का पालन कर रहे थे जिसमें देश के अन्य भागों के लोगों को उनकी रुचि के विषय मिलने की बात कही गई थी।

'हिन्दी केसरी' के संवाददाता मध्यप्रदेश तथा देश के अन्य स्थान पर भी थे। दूसरे समाचार पत्रों से भी समाचारों का संकलन किया जाता था।

'हिन्दी केसरी' के प्रकाशन के चार मास बाद ही उसके सम्पादन का भार पंडित जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल को सौंपा गया और व्यवस्था का भार सप्रेजी के पास था। 'हिन्दी केसरी' के सम्पादकीय विभाग में सर्वश्री लक्ष्मीधर वाजपेई, लल्लीप्रसाद पांडेय और गंगाप्रसाद गुप्त भी थे। हिन्दी ग्रंथमाला भी 'हिन्दी केसरी' के द्वारा राजनीतिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होती थी। अन्य ख्याति प्राप्त लेखकों के साथ साथ इसी समय से राष्ट्रीय लेखक के रूप में पं. माखनलाल चतुर्वेदी और पं. लोचनप्रसाद पांडेय भी प्रकाश में आए थे। कुछ ही दिनों में 'हिन्दी केसरी' ने देश में प्रमुख स्थान बना लिया था। इसकी ग्राहक संख्या 6 हजार तक पहुँच गई। सेना और पुलिस में इसका पढ़ना अपराध माना जाता था। यह बात रौलट-राजद्रोह जाँच कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में भी अंकित की है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि हिन्दी की पत्रिकाएँ कितनी अधिक जोशीली और राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत रहती होंगी।

सन 1908 में पूरे देश में स्वदेशी आंदोलन तेज हो रहा था। गाँव-गाँव में इसकी लहर फैल गई थी। इसे बर्बरता से दबाया भी जा रहा था। इसी दौरान क्रांतिकारियों की ओर से एक परचा बाँटा गया था। उसकी नकल नागपुर के 'हिन्दी केसरी' में दिनाँक 30 जून 1908 को प्रकाशित हुई थी। वह इस प्रकार थी -

''प्यारे भाइयों - अपने प्यारे देश की सेवा करने के कारण हम नारकी दुश्मनों के शापदायक पंजों में पड़े हैं - या तो हम लुच्चों की फांसी में लटकेंगे या सदा कालकोठरी में धाँधे जाएँगे। यह परदेशी शैतान का द्वेष है, परंतु हम जरा भी दुःखी नहीं हैं क्योंकि उसके लिए हम तैयार ही हैं। जहाँ तक कल्पना की दौड़ जा सकती है - वे जुल्म करते हैं। इसके सामने रूस के जार का जुल्म किसी गिनती में नहीं है। वे जानते हैं कि हममें कितना चीमड़पन है और कितने सच्चे उमंग से भारी काम करना चाहते हैं। भाइयो - हमारे काम के वारिस तुम्हीं हो। हम बिदा तो होते हैं, तुम्हीं हमारा काम प्रधानता से करोगे। हमें विश्वास है कि स्वयं भगवान भी इंग्लैंड की इस भयानक स्थिति से रक्षा नहीं करेगा। अब उसके दिन पूरे होते आ गए हैं। हर देशभक्त पुरुष की जिंदगी के लिए हर जगह में दर्जनों अँगरेजों को मारो। भारत में बलवाइयों का यही तेज कार्य कहा जाएगा। हर एक अँगरेजों को जान लेने दो, कि हर एक जिले में उसका जान-माल जोखिम में है। हम तो मरते हैं - उसमें किसी को कुछ भी उज्र नहीं है। जिस दिन इन श्वेत शैतानों की भारी और खूंखार भगदड़ मचेगी, उसी दिन तक हम ऐसे सैकड़ों मरेंगे, परंतु हमें बिदा होने के पूर्व यह सुन लेने दो और उसे सुनकर खुश होने दो .... कि हमारे फैसले के दिन तुमने दो सौ गोरों को जहन्नुम में पहुँचाया है। यह कार्य हमारे साथ तुम्हारी व्यावहारिक सहानुभूति का होगा और यह हमारा सर्वोत्तम स्मारक होगा।''

'हिन्दी केसरी' में ऐसे विस्फोटक परचे का छपना एक असाधारण घटना थी। इससे पत्र का चरित्र भी उजागर होता है कि वह निडरता से आंदोलनकारियों और क्रांतिकारियों का समर्थन करने में उत्साह से हाथ बँटा रहा था और यह संदेश भी दे रहा था कि भारतवासी स्वाधीनता की लड़ाई के लक्ष्य में एकजुट हैं।''

'हिन्दी केसरी' में राजनीति और साहित्य दोनों का संतुलन रखा जाता था। लेकिन यह भी ख्याल रखा जाता था कि इसमें किसी भी प्रकार का कोई ऐसा लेख या विचार न चला जाए जो राष्ट्र की अस्मिता अथवा गौरव के विपरीत हो। प्रयास यह भी रहता था कि राष्ट्रीय चेतना से जुड़ी अधिक से अधिक सामग्री का इसमें समावेश हो।

'हिन्दी केसरी' की छपाई देशसेवक प्रेस में होती थी। सप्रेजी इसके व्यवस्थापक भी थे। प्रेस के मालिक श्री माधवराव पाध्ये, तिलक जी के गरम दल की विचारधारा से मतभेद रखते थे, लेकिन वे माधवराव सप्रे के प्रति आदर का भाव रखते थे। 'हिन्दी केसरी' गरम दल की विचारधारा का पोषक था। अँगरेज सरकार ऐसे भड़काऊ और ओजस्वी विचारों को दबाने की कोशिश करती थी। 'हिन्दी केसरी' में सरकार के विरुद्ध भी विचार व्यक्त किए जाते थे। इससे प्रेस के मालिक श्री पाध्ये चिंतित थे। श्री पाध्ये ने अपनी इस चिंता से सप्रेजी को अवगत भी करा दिया था। अतः सप्रेजी ने विवश होकर व्यवस्थापक पद से इस्तीफा दे दिया और 'हिन्दी केसरी' की छपाई की अन्यत्र व्यवस्था देखने लगे। हिस्लाप कॉलेज के भूतपूर्व प्रोफेसर भागीरथ प्रसाद जो बड़े निर्भीक और देशभक्त थे तथा नागपुर के धनाढ्य गोपालराव बूटी की सम्पत्ति (इस्टेट) के मैनेजर भी थे। उन्होंने गोपालराव बूटी के यहाँ से सप्रेजी को 6000 रुपये का कर्ज दिला दिया। यह कर्ज उन्होंने इसलिए भी दिलवाया क्योंकि वे स्वयं सप्रेजी की लेखनी के प्रशंसक थे।

इस राशि से स्वतंत्र प्रेस की स्थापना हुई और वहाँ से 'हिन्दी केसरी' का प्रकाशन होने लगा। सप्रेजी को डर था कि 'हिन्दी केसरी' के संपादक

को कभी भी जेल जाना पड़ सकता था। अतः उन्होंने अपने साथियों को इस प्रकार तैयार कर रखा था कि उनके जेल जाने पर पत्र का प्रकाशन उसी शैली में अनवरत होता रहे।

मराठी केसरी के लेखों के कारण महाराष्ट्र सरकार ने लोकमान्य तिलक पर मुकदमा चलाया और उन्हें देश निकाले का दंड देकर 6 वर्ष के लिए मांडले (बर्मा) भेज दिया। इसी के अनुसरण में नागपुर की सरकार ने 'हिन्दी केसरी' के लेखों को आधार बनाकर सप्रेजी पर भी मुकदमा चला दिया।

तिलक जी के बाहर रहने पर मराठी केसरी का संपादन सर्वश्री केलकर और खाडिलकर करने लगे। पत्र की भाषा कुछ मृदु हो गई पर दोनों संपादक बड़ी चतुराई से काम करते थे, ताकि जनता के हृदय में छिपी आग सुलगती रहे।

'हिन्दी केसरी' के दूसरे वर्ष के प्रारंभ में 'नये वर्ष में पदार्पण' शीर्षक से अग्रलेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें सरकार की दमननीति, भारत के पुत्रों का कर्त्तव्य इत्यादि बातों का विवेचन किया गया था। यह लेख और 'काला पानी' ऐसे दो मौलिक लेख और दो मराठी से अनुवादित लेख (1) देश का दुर्देव, (2) 'बाम्ब गोले का रहस्य', इस प्रकार चार लेख जब 'हिन्दी केसरी' में छपे तो कई दिनों से ताक में बैठे अधिकारियों को मौका मिल गया। फौजदारी मुकदमा चलाने के लिए यह सब काफी था। 'देश सेवक' पत्र में भी ऐसे लेख छपे थे जो सरकार को अप्रिय लगे थे। दिनाँक 22 अगस्त 1908 को 'देशसेवक' और 'हिन्दी केसरी' के संपादकों (श्री अच्युतराव कोल्हटकर और श्री माधवराव सप्रे) की प्रेसों और घरों की तलाशी पुलिस के पहरे में ली गई। दोनों सम्पादक इंडियन पीनल कोड की धारा 124(अ) के अंतर्गत गिरफ्तार किए गए।

सप्रेजी की गिरफ्तारी के बाद पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी के नाम घोषणा पत्र जारी हुआ और 'हिन्दी केसरी' उसी तर्ज पर अनवरत निकलता रहा। सम्पादक कार्य भी पं. जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल ही करते रहे। गिरफ्तारी के समय सप्रेजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था जो बाद में और भी बिगड़ गया। उन्हें अर्जी करने पर भी जमानत नहीं मिली।

29 सितम्बर 1908 को हिन्दी केसरी में समाचार छपा, 'सप्रेजी का स्वास्थ्य पहले से ही खराब था। उन्हें अपचन और पेटदर्द की शिकायत रहती थी। हवालात में स्वास्थ्य कुछ अधिक बिगड़ गया। खुराक कम हो गई और वजन घटने लगा। इस तरह अनेक आपत्तियों का सामना करते हुए वे हवालात में लड़ते रहे और अटल बने रहे।

सप्रेजी की गिरफ्तारी के बाद 'बिहार बंधु ने लिखा - ''गत वर्ष सप्रेजी ने 'हिन्दी केसरी' जैसे अद्वितीय पत्र की सृष्टि की है। जिसके द्वारा राष्ट्र की विशेष जागृति हुई है। राजर्षि तिलक के नूतन विचारों का घर-घर में विकास हुआ है, ऐसा कहने में कुछ अत्युक्ति नहीं है। यदि पं. माधवराव सप्रे हिन्दी केसरी न निकालते तो राजर्षि तिलक के विचार हिन्दी जानने वाले मनुष्यों में कदापि न फैलते। सर्वसाधारण हिन्दी जानने वाले लोगों के हृदय में यदि किसी के द्वारा महात्मा तिलक के उपदेश अंकित हुए हैं - तो माधवराव सप्रे के द्वारा हुए हैं। भारत की प्रायः सभी प्रचलित भाषाओं में राजद्रोह होने के अभियोग आ चुके हैं। अँगरेजी, मराठी, उर्दू, तिलंगी कोई भी भाषा राजद्रोह के (काल्पनिक द्रोह) अभियोग से बेदाग बच नहीं सकी है। केवल एक मात्र हिन्दी अब तक उस अभियोग से साफ बची रहने का न्यारा सौभाग्य मना रही थी। कुछ दिनों से हिन्दी पर धमकियाँ तो मिलने लग गई थीं, किंतु भाषा में राजद्रोह होने का अभियोग अभी इसी सप्ताह आया। प्रथम आघात सहयोगी 'हिन्दी केसरी' पर हुआ। हमें सहयोगी की यह विपद अपनी विपद के समान जँच रही है। विपद में विपदहारी मधुसूदन ही एकमात्र अवलम्बन हैं। उनकी अनंत कृपा विपदग्रस्त श्रीयुत माधवराव सप्रे के स्वजनों को इस विपद में ढारस अवलम्बन किए रहने की शक्ति देगी।''

सप्रेजी की कारावास यात्रा, पारिवारिक दबाव, बड़े भाई पर सरकारी दबाव और बड़े भाई द्वारा आत्महत्या की धमकी दिए जाने के बाद सप्रेजी का माफीनामा इस विषय का अलग अलग संदर्भों में विश्लेषण अलग अलग स्थानों पर किया गया है। अतः यह बात प्रायः स्पष्ट हो गई है कि सप्रेजी ने माफी ब्रिटिश हुकूमत के भय से नहीं बल्कि अपने पिता तुल्य बड़े भाई के भावनात्मक दबाव के कारण माँगी थी। अतः उसकी चर्चा यहीं रोकी जा रही है।

यहाँ यह बात भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सप्रेजी द्वारा माफी माँगे जाने पर उनकी सार्वजनिक आलोचना करने का कार्य भी सर्वप्रथम 'हिन्दी केसरी' ने ही किया। यह कार्य भी सप्रेजी की प्रेरणा और उनके द्वारा इस बारे में सलाह दिए जाने पर किया गया। 'हिन्दी केसरी' में हुई आलोचना के बाद सप्रेजी के इस काम की निंदा अन्य पत्रों में भी की गई। यह सप्रेजी की पत्रकारिता और राष्ट्रीयता को दिए गए उच्चतम निस्वार्थ अवदान की ही मिसाल है कि उन्होंने स्वयं अपने कृत्य की आलोचना करने के लिए अपने द्वारा स्थापित समाचार पत्र को प्रेरित किया।

सप्रेजी के अलग हो जाने पर 'हिन्दी केसरी' की हालत भी बहुत अच्छी नहीं रही। कमजोर आर्थिक अवस्था और सरकार से नाराजगी के डर के चलते 'हिन्दी केसरी' का बहुत ज्यादा दिनों तक चलाया जाना कठिन हो रहा था। डा. मुंजे चाहते थे कि 'हिन्दी केसरी' चलता रहे पर शासन के आतंक के कारण उन्हें पर्याप्त साहसी सहयोगी नहीं मिल पा रहे थे। श्री बूटी से लिए गए कर्जे की अदायगी भी ठीक से नहीं हो पा रही थी। अंततः मार्च 1909 के बाद 'हिन्दी केसरी' निकलना बंद हो गया। इसके बाद के अंकों का कोई उल्लेख नहीं मिलता, अतः माना जाना चाहिए कि 'हिन्दी केसरी' मार्च 1909 तक ही निकला होगा।

'हिन्दी केसरी' का जन्म मूलतः लोकमान्य तिलक के केसरी में प्रकाशित विचारों को हिन्दी भाषा में व्यापकता देने के लिए हुआ था। पर इसमें कई विविध विषयों का भी समावेश था। इसमें निबंध, लेख, जीवनी, समाचार, समालोचना के अतिरिक्त वैचारिक लेखों के अनुवाद का भी समावेश रहता था।

इसके अतिरिक्त 'हिन्दी केसरी' का एक मुख्य आकर्षण सप्रेजी का मौलिक और तेजस्वी सम्पादकीय तथा निबंध रहते थे। सप्रेजी के निबंधों में अँगरेजी शासन के प्रति आक्रोश का भाव रहता था और वे अपने सम्पादकीय से नवजागरण का उद्घोष करते थे।

हिन्दी भाषी प्रदेशों में पत्रकारिता के माध्यम से तिलक की उग्रपंथी और आत्म बलिदानी राजनीति को प्रतिष्ठित करने का एकमात्र श्रेय निःसंदेह माधवराव सप्रे को जाता है।

वे हिन्दी केसरी को चलाने और इसकी भाषा का स्तर ऊँचा रखने का कार्य करते रहे। हिन्दी पत्रों में निष्पक्ष संपादन और निर्भीक आलोचना के आदर्श की स्थापना का श्रेय सप्रेजी को ही है।

सप्रेजी ने 'हिन्दी केसरी' के माध्यम से ही राष्ट्रवादी चिंतकों एवं लेखकों की एक नई पीढ़ी का सृजन किया। जिन्होंने आगे जाकर देश की आजादी और राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रवादी चेतना के ज्वलंत उत्प्रेरक के रूप में 'हिन्दी केसरी' सदा याद किया जाएगा।

संदर्भ -

1. पं. गोविंद राव हार्डीकर : पं. माधवराव सप्रे जीवनी
2. श्री संतोष कुमार शुक्ल : माधवराव सप्रे-व्यक्तित्व एवं कृतित्व
3. डा. मंगला अनुजा : भारतीय पत्रकारिता नींव के पत्थर
4. सं. डा. अशोक सप्रे : माधवराव सप्रे के हिन्दी ग्रंथमाला के निबंध
5. डा. अर्जुन तिवारी : इतिहास निर्माता पत्रकार

(Email - sjoshi09@yahoo.com)

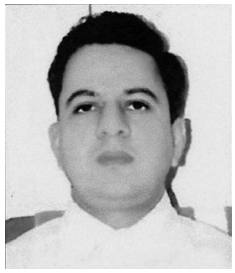
(डा. हिमांशु द्विवेदी)

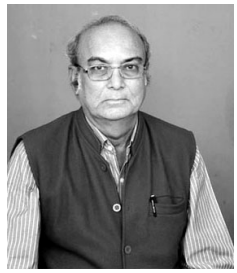
(श्री आसिफ इकबाल)

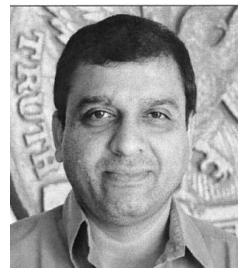
(श्री ई.वी. मुरली)

(श्री अवधेश मिश्र)

हिमांशु द्विवेदी को माधवराव सप्रे राष्ट्रीय रचनात्मकता सम्मान; आसिफ, मुरली, मिश्र को पुरस्कार

राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद ने पाँच नवम्बर को रायपुर में आयोजित पाँच दिवसीय राज्योत्सव के समापन कार्यक्रम में चार वरिष्ठ पत्रकारों को राज्य अलंकरणों से सम्मानित किया। 'हरिभूमि' के संपादक डा. हिमांशु द्विवेदी को पंडित माधवराव सप्रे राष्ट्रीय रचनात्मकता सम्मान से सम्मानित किया गया।

श्री आसिफ इकबाल को हिन्दी प्रिंट मीडिया के अंतर्गत 'चंदूलाल चंद्राकर स्मृति पत्रकारिता पुरस्कार', श्री ई.वी. मुरली को अँगरेजी प्रिंट मीडिया के अंतर्गत 'मधुकर खेर स्मृति पत्रकारिता पुरस्कार' और श्री अवधेश मिश्र को हिन्दी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर्गत 'चंदूलाल चंद्राकर स्मृति पत्रकारिता पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। ये पुरस्कार जनसम्पर्क विभाग की ओर से दिए जाते हैं। इनके अलावा प्रदेश के 20 नागरिकों और तीन संस्थाओं को राज्य अलंकरणों से नवाजा गया।

चार मार्च 1973 को जन्मे डा. हिमांशु द्विवेदी ने 'हिन्दी पत्रकारिता पर बाजार का प्रभाव' विषय पर पीएच. डी. उपाधि अर्जित की है। सन 1991 में आपने ग्वालियर के आज से पत्रकारिता आरंभ की। फिर दैनिक भास्कर, नवभारत और स्वदेश में सेवाएँ दीं। मई 2001 में 'हरिभूमि'-रोहतक - में प्रबंध संपादक हुए। सोलह बरस बाद अब हरिभूमि के मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ संस्करणों के प्रधान संपादक हैं।

29 मई 1951 को रायपुर में जन्मे श्री आसिफ इकबाल सन 1971 से पत्रकारिता कर रहे हैं। आप देशबंधु, महाकोशल, युगधर्म, सवेरा संकेत, अमर किरण, अमृत संदेश, प्रखर समाचार, लोकमत समाचार, संदेश बंधु टाइम्स, दैनिक भास्कर में कार्यरत रहे हैं। संप्रति मासिक पत्रिका 'खेलधारा' का संपादन कर रहे हैं। ❑❑

मूर्धन्य संपादक श्री प्रभाष जोशी एवं प्रकृति चिंतक श्री अनुपम मिश्र को

सप्रे संग्रहालय की आदरांजलि

'चम्बल की बन्दूकें गांधी के चरणों में'

आदर्श रिपोर्टिंग की मार्गदर्शी पुस्तक का शीघ्र प्रकाशन

शोध पत्र

ऑडिएंस की बदलती अवधारणा : 1

■ लाल बहादुर ओझा[1], निक्की तिवारी[2]

सारांश

किसी भी संचार प्रक्रिया में प्राप्तकर्ता या रिसीवर महत्वपूर्ण तत्व होता है। आमतौर पर इसके लिए ऑडिएंस नामक संज्ञा का उपयोग किया जाता है। ऑडिएंस की अवधारणा समय, समाज और बदलती संचार तकनीक के साथ बदलती गई है। इस आलेख में ऑडिएंस की बदलती अवधारणाओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है। विकास, बाजार और बेहतर संचार के लिए ऑडिएंस और उसकी प्रकृति को समझने की लगातार कोशिशें हुई हैं।

मुख्य पद (की वर्ड) : संचार, जनसंचार, ऑडिएंस, मीडिया।

परिचय

ऑडिएंस संचार-प्रक्रिया (communication process) का एक महत्वपूर्ण अंग है। संचार माध्यमों द्वारा प्रसारित की जा रही सूचनाओं की परिकल्पना ऑडिएंस के अभाव में नहीं की जा सकती। कहा जा सकता है कि बिना ऑडिएंस के मीडिया का कोई अस्तित्व नहीं है। दरअसल, संचार माध्यम यानी मीडिया अपने ऑडिएंस के लिए उसकी प्रकृति के अनुसार ही सन्देश, संवाद या सूचना का निर्माण करती है।

सवाल उठता है कि ऑडिएंस है क्या और कौन है। प्रोफेसर शॉन मूरेस ने अपनी पुस्तक "Interpreting Audiences (1993)" में ऑडिएंस का उल्लेख किया है कि ऑडिएंस कोई ऐसा स्थिर तत्व नहीं है जिसे अलग करके देखा जा सके या पहचाना जा सके। बल्कि यह लोगों का समूह है जो सामाजिक-सांस्कृतिक या फिर विभिन्न तरह के संचार माध्यमों के उपयोग के कारण विभिन्न समूहों में विभाजित हैं। प्रोफेसर शॉन मूरेस ने ऑडिएंस शब्द की जगह ऑडिएंसेज (Audiences) शब्द को प्राथमिकता दी है।

"There is no stable entity which we can isolate and identify as the media audience - The plural] audiences] is preferable denoting several groups divided by their reception of different media and genres] or by social and cultural positioning."(1993, pp - 1-2)

ऑडिएंस शब्द का प्रयोग उन सभी लोगों के लिए किया जाता है जो किसी न किसी रूप में मीडिया का उपयोग कर रहे हैं। हालाँकि अलग अलग माध्यमों के ऑडिएंस के लिए विशिष्ट संज्ञाएँ हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि सिर्फ ब्राडकास्ट माध्यमों या ऑडियो-वीडियो का उपभोग करने वाले लोगों को ही ऑडिएंस कहा जाए। अखबार के पाठक हों, रेडियो के श्रोता हों, टेलीविजन के दर्शक हों या फिर इंटरनेट के उपयोगकर्ता, सामान्यतः उन्हें ऑडिएंस ही कहा जाता है। आज हरेक व्यक्ति एक ऑडिएंस है। हम सभी किसी-न-किसी रूप में मीडिया का उपयोग जरूर करते हैं।

1. सहायक प्राध्यापक मा.च.रा.प.सं. विवि, भोपाल, नोएडा परिसर
2. मीडिया शोधकर्ता

पूर्वपीठिका

ऑडिएंस की अवधारणा नयी नहीं है। यह समय के साथ बदलती रही है। इसके बदलते स्वरूप को संचार की बदलती अवधारणा के साथ रखकर देखा जा सकता है। यह सच है कि आधुनिक जनसंचार माध्यमों विशेषकर रेडियो और टेलीविजन के आने के बाद ऑडिएंस शब्द प्रचलन में आया। लेकिन, ऑडिएंस की अवधारणा संचार के क्षेत्र में प्राचीन समय से ही मौजूद रही है। लोगों के बीच मौखिक और आमने-सामने यानी प्रत्यक्ष संचार का चलन था। इन्हें हम परंपरागत संचार या लोक संचार के रूप में जानते हैं। इसमें किसी खास अवसर पर संवाद के लिए जनता एक निश्चित स्थान पर एकत्र होती है - आम सभा, मेला, नाटक, हाट आदि । संचार की यह अवधारणा अरस्तू के संचार-प्रारूप (Communication Model) में देखने को मिलती है। करीब 300 ईसा पूर्व अरस्तू ने संचार का यह रैखिय मॉडल दिया था। इसे सबसे पहला कम्यूनिकेशन मॉडल माना जाता है।

Speaker > Speech > Occasion > Audience > Effect

अरस्तू के इस मॉडल में अवसर (occasion) का उल्लेख किया गया है यानी उस समय ऑडिएंस को मैसेज देने के लिए अवसर की प्रतीक्षा की जाती थी। स्पीकर अपनी स्पीच तभी दे पाता था जब ऑडिएंस एक जगह इकट्ठा हो। अरस्तू का कम्यूनिकेशन मॉडल उस समय के ऑडिएंस की स्थिति को बताता है।

इस कम्यूनिकेशन मॉडल में स्पीकर का ज्यादा महत्व था। यह स्पीकर की जिम्मेदारी थी कि वह ऑडिएंस को स्पीच यानि मैसेज दे। इस मॉडल से ऑडिएंस की यह समझ बनती है कि वह निष्क्रिय है। संचार-व्यवस्था में उसकी अपनी कोई भागीदारी नहीं होती, सिवाय स्पीच या मैसेज को सुनने के। स्पीकर द्वारा जो भी सूचना दी जाती थी, वह ग्रहण कर लेते थे। ऑडिएंस स्थानीय होने के कारण एक-दूसरे से परिचित होती थी। उनकी सूचना एवं मनोरंजन की कमोबेश एक-समान जरूरत हुआ करती थी, लेकिन जैसे-जैसे संचार के माध्यमों का विकास होता गया, वैसे-वैसे ऑडिएंस की अवधारणा भी बदलती गई।

बीसवीं शताब्दी में संचार माध्यमों का काफी विकास हुआ। पहले की तरह सूचना देने के लिए अवसर की तलाश नहीं की जाती थी और न ही लोगों के इकट्ठा होने का इंतजार, बल्कि संचार माध्यमों द्वारा सूचना का संप्रेषण कर दिया जाता था और प्राप्तकर्ता (Receiver) सूचना को ग्रहण कर लेता था। उस दशक के संचार प्रारूपों को देखें तो संचार माध्यम और रिसीवर की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। सन 1948 में हैराल्ड लॉसवेल ने संचार के एक रेखिय मॉडल के जरिये ऑडिएंस को संचार माध्यम से जोड़ा। लॉसवेल के मॉडल में प्राप्तकर्ता (Receiver) संचार माध्यम यानी चैनल से सूचना प्राप्त करता है और उसका कुछ प्रभाव प्राप्तकर्ता पर पड़ता है।

Who - Says What - To Whom - In Which Channel - With What Effect

इसके बाद, 1949 में शैनन एवं वीवर के रेखिय मॉडल में भी चैनल और रिसीवर के बीच के संबंध को दर्शाया गया कि किस तरह चैनल के माध्यम से 'शोर', मैसेज के साथ प्राप्तकर्ता तक पहुँचता है और सही सूचना प्राप्त करने में बाधा पहुँचाता है। शैनन एवं वीवर ने संचार का यह प्रारूप टेलीफोन से होने वाले संचार के लिए विकसित किया था।

Sender - Transmitter - Channel - Receiver - Destination Noise

इसके बाद, 1960 में डेविड बर्लो ने एक नया रेखिय प्रारूप दिया SMCR जो कि शैनन एवं वीवर के मॉडल का विकसित स्वरूप था।

SOURCE - MESSAGE - CHANNEL - RECEIVER

उपरोक्त सभी संचार प्रारूपों से यह स्पष्ट है

कि संचार माध्यमों से सूचना प्राप्त करने वाला यानी रिसीवर ही ऑडिएंस है।

प्रख्यात संचार विशेषज्ञ प्रोफेसर डेनिस मैक्वेल ने अपनी पुस्तक 'ऑडिएंस एनालिसिस' (1997) में यह पुष्टि की है कि हम सभी ऑडिएंस से पूर्व-परिचित हैं। जनसंचार के संचार प्रारूप (Communication Model) में जो 'रिसीवर' है, वास्तव में वहीं आडिएंस है।

नए बदलाव

संचार प्रौद्योगिकी (Communication Technology) के विकास ने ऑडिएंस की अवधारणा को नया आयाम दिया है। जब प्रिंट टेक्नोलॉजी आई, तब तक ऑडिएंस एक मास (Mass) या भीड़ (Crowd) में तब्दील हो चुका था। अब ऑडिएंस वह नहीं रहा जिसकी सूचना एवं मनोरंजन की एक-समान जरूरतें होती थीं। यह काफी विविध होता गया क्योंकि ऑडिएंस का स्थानीय स्तर पर एक छोटा समूह न होकर एक बड़ा समूह बन गया था। इस समय का ऑडिएंस एक-दूसरे से पूरी तरह अपरिचित था। हालाँकि एक स्तर पर उसमें अभी ऑडिएंस परिपक्वता का अभाव था। इसलिए मीडिया द्वारा जो मैसेज दिए जाते थे, उसे स्वीकार कर लिया जाता था।

समय के साथ यह अवधारणा भी बदली। टेलीविजन क्रांति होने के बाद ऑडिएंस का दूसरा स्वरूप सामने आया। धीरे-धीरे ऑडिएंस परिपक्व होने लगा था। हाथ में रिमोट आने के बाद उसकी अपनी पसंद-नापसंद थी। अब वह पूरी तरह संचार-प्रक्रिया का सक्रिय सदस्य बन गया। वह मीडिया कंटेट से प्रभावित होने की जगह संचार माध्यमों को प्रभावित करने लगा।

आज के ऑडिएंस का यह समूह काफी विविधतापूर्ण है जिसमें हर-एक शख्स अपनी इच्छा और जरूरत के अनुसार संचार माध्यमों का उपयोग करता है। यही वजह है कि प्रत्येक संचार माध्यम का अपना-अपना ऑडिएंस होता है, जैसे प्रत्येक अखबार का एक पाठक वर्ग होता है, टेलीविजन प्रोग्राम का दर्शक वर्ग होता है और रेडियो का श्रोता वर्ग होता है। संचार माध्यम ऑडिएंस रिसर्च के जरिये अपने ऑडिएंस के बारे में जानकारी जुटाते हैं कि उनका ऑडिएंस कौन है और कहाँ है? इस तरह वे अपने ऑडिएंस की बनावट, उसके स्वभाव, व्यवहार और उसकी भौगोलिक स्थिति का पता लगाते हैं और अपने ऑडिएंस को आकर्षित करने के लिए उनकी पसंद के अनुसार विषय-वस्तु का निर्माण करते हैं।

इसी बीच, नब्बे के दशक में न्यू मीडिया ने दस्तक दी। ऑडिएंस को व्यापक अर्थ देने में न्यू मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान है। न्यू मीडिया के आने के बाद ऑडिएंस की बनावट और भी जटिल होती जा रही है। ऑडिएंस पहले से और भी ज्यादा विखंडित (Fragmented) होता जा रहा है। रुचि और जरूरत के आधार पर ऑडिएंस के छोटे-छोटे समूहों का निर्माण हो रहा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आज के ऑडिएंस के पास कई विकल्प मौजूद हैं।

नया मीडिया, नयी ऑडिएंस

न्यू मीडिया के आने के बाद ऑडिएंस का समूह और भी बड़ा (Massive) हो गया है, लेकिन अब ऑडिएंस काफी बिखरा (disperse) हुआ है। यह बहुत ही छोटे-छोटे समूहों में विखंडित हो गया है। पहले ऑडिएंस का विभाजन भौगोलिक सीमाओं के कारण होता था, लेकिन अब ऑडिएंस के विभाजित होने का कारण उसकी इच्छाएँ, अपेक्षाएँ, विचार, मूल्य एवं उसके पसंद-नापसंद हो गए हैं। हर समूह की अपनी विशेषता, अपेक्षाएँ और जरूरतें हैं। न्यू मीडिया के कारण ऑडिएंस के पास अनेक विकल्प मौजूद हो गए हैं। उन्हें सभी तरह की सूचनाएँ एक ही प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध हो गई हैं चाहे वह प्रिंट हो या फिर ऑडियो-वीडियो। इतना ही नहीं न्यू मीडिया ऑडिएंस को नॉन-लीनियर यानी अरेखिय तरीके से सूचना उपलब्ध करवाता है। ऑडिएंस जब चाहे तब अपना पसंदीदा विषय वस्तु हासिल

कर सकता है। मनचाहे प्रोग्राम मनचाहे समय में देख सकता है। उसकी बाध्यता प्रकाशित और प्रसारित हो रहे कार्यक्रमों तक सीमित नहीं है बल्कि वह ऑनलाइन खबरें पढ़-देख-सुन सकता है। अर्थात ऑडिएंस अपनी सुविधानुसार मीडिया कंटेट का उपयोग कर सकता है।

न्यू मीडिया के आने के बाद ऑडियंस बहुत ज्यादा सक्रिय (highly active) हो गया है। मीडिया का नियंत्रण ऑडिएंस पर से कम हुआ है। सोशल मीडिया ने तो ऑडिएंस को महत्वपूर्ण भूमिका दिला दी है। परंपरागत संचार-माध्यमों पर ऑडिएंस की निर्भरता कम हुई है। न्यू मीडिया के ऑडिएंस को एक साथ और एक ही जगह पर अखबार (ई-पेपर), रेडियो (वेब-रेडियो) और टीवी (वेब टीवी) का कंटेट उपलब्ध हो जाता है। ऑडिएंस खुद तय कर रहा है कि वह कब, कौन-सा कंटेट देखना चाहता है।

न्यू मीडिया पर ऑडिएंस कई तरह से संचार प्रक्रिया में भागीदारी कर सकता है। वह एक ही मंच पर अंतरवैयक्तिक, समूह और जनसंचार भी कर सकता है। परंपरागत संचार माध्यमों के द्वारा हम जनसंचार तो कर सकते थे लेकिन अंतरवैयक्तिक संचार करना संभव नहीं था। उदाहरण के लिए, ई-मेल में हम अंतरवैयक्तिक संचार करते हैं तो ग्रुप-चैट, वीडियो-कॉन्फ्रेंसिंग में समूह संचार और वेबसाइट्स, पॉडकास्ट या बुलेटिन बोर्ड्स द्वारा जनसंचार।

डेनिस मैक्वेल ने अपनी पुस्तक 'ऑडिएंस एनालिसिस' में लिखा है कि न्यू मीडिया के प्रादुर्भाव से ऑडिएंस अपनी राष्ट्रीय, स्थानीय एवं सांस्कृतिक पहचान खो देगी लेकिन इसके साथ ही एक नये तरह के संवादात्मक समूह (Interactive Audience) का निर्माण होगा जो पुराने समूह की जगह ले लेंगे और तब एक जैसी रुचि रखने वाले लोगों के लिए ज्यादा आजादी और ज्यादा विकल्प उपलब्ध होंगे। मैक्वेल का यह कथन समय के साथ-साथ सही साबित हो रहा है। सोशल मीडिया ने ऑडिएंस को अपने पसंद के लोगों के साथ मिलकर नये संवादात्मक (Interactivity) समूहों का निर्माण करने के लिए प्रेरित किया है जिनकी न तो कोई राष्ट्रीय पहचान है, न क्षेत्रीय और न ही कोई सांस्कृतिक पहचान।

(अगले अंक में जारी)

(Email - lalbahadur9@gmail.com)

अमर वाणी

अध्ययन

मस्तिष्क के लिए अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है जितनी शरीर को व्यायाम की।

- जोसेफ एडीसन

अध्ययन के प्रति प्रेम व्यक्तियों को, जीवन में आने वाले विषाद और क्लान्ति के क्षणों की आनन्द और प्रसन्नता के क्षणों में परिणत करने में सक्षम बनाता है।

- मान्टेस्की

अध्ययन हमें आनन्द प्रदान करता है, अलंकृत करता है और योग्यता प्रदान करता है।

- फ्रांसिस बेकन

प्रकृति की अपेक्षा अध्ययन के द्वारा अधिक व्यक्ति महान बने हैं।

- सिसेरो

अत्यधिक अध्ययन भी शरीर की क्लान्ति है।

- बाइबिल

पढ़ने से सस्ता कोई मनोरंजन नहीं, न कोई खुशी उतनी स्थायी।

- लेडी मौंटैग्यू

आज पढ़ना सब जानते हैं, पर क्या पढ़ना चाहिए, यह कोई नहीं जानता।

- बर्नार्ड शा

विश्लेषण

उत्तरप्रदेश की समकालीन हिन्दी पत्रकारिता

■ सन्त समीर

बात हिन्दी पत्रकारिता की चले तो उत्तरप्रदेश का नाम इतिहास की सबसे स्वर्णिम इबारत लिखने वालों में लिया जाएगा। उत्तराखंड की पत्रकारिता को भी इससे अलग करके नहीं देखा जा सकता। 190 साल पहले सन 1826 में बंगाल के 'उदंत मार्त्तण्ड' ने हिन्दी पत्रकारिता की जो मशाल जलाई, उसे उत्तर प्रदेश के काशी और प्रयाग की पत्रकारिता ने ही सही मायने में ज्वाला का रूप दिया। काशी से आजादी से पहले और आजादी के बाद कितने समाचार पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, इसकी कोई प्रामाणिक सूची अभी तक नहीं बन पाई है, पर अनुमान है कि यह संख्या पाँच सौ से ज्यादा ठहरेगी। प्रयाग की तमाम छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाओं को इस लेखक ने स्वयं जब सूचीबद्ध किया तो इनकी संख्या सात सौ से ज्यादा निकली। इसी तरह लखनऊ, कानपुर, मेरठ, गोरखपुर, आगरा, बरेली, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, बदायूँ, झाँसी, जालौन, नैनीताल आदि तमाम जगहों से समय-समय पर बड़ी संख्या में निकली पत्र-पत्रिकाओं के परोक्ष-प्रत्यक्ष योगदान ने हिन्दी पत्रकारिता के अतीत और वर्तमान का चेहरा गढ़ा। सही मायने में हिन्दी पत्रकारिता अपनी संपूर्णता में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता का एक तरह से समुच्चय है। बाकी जगहों, यहाँ तक कि दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता भी इन्हीं दो प्रदेशों की पत्रकारिता की छाया है।

आजादी के पहले से लेकर वर्तमान तक दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक की समाचार-विचार की पत्रकारिता से लेकर साहित्यिक पत्रकारिता तक उत्तरप्रदेश की सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जिनका योगदान विशिष्ट रहा। हिन्दी पत्रकारिता के भाषा-संस्कार, शिल्प और सरोकार को राह दिखाने में इस प्रदेश की पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका को कई रूपों में रेखांकित किया जा सकता है। हिन्दी भाषा को मानक रूप देने में उत्तरप्रदेश की पत्र-पत्रिकाओं का योगदान सर्वाधिक ही कहा जाएगा।

सन 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका का इलाहाबाद से प्रकाशन शुरू हुआ तो साहित्य का जैसे एक नया युग ही शुरू हो गया। हिन्दी भाषा में साफ-सुथरे लेखन और शब्द संधान की जो परंपरा शुरू हुई तो उसने पूरी हिन्दी पत्रकारिता को गहरे तक प्रभावित किया। सरस्वती के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने प्रयाग की साहित्यिक पत्रकारिता को नई ऊँचाई दी। द्विवेदी जी ने साहित्यकारों का एक बड़ा समूह तैयार किया, जिनमें से कई ने समाचार पत्रों की पत्रकारिता में भी बड़ा योगदान दिया। सरस्वती की धमक पूरे देश के साहित्य और पत्रकारिता जगत में ऐसी रही कि लगभग सारे दैनिक समाचार पत्रों में साहित्य के पृष्ठ लगभग अनिवार्य रूप से दिए जाने लगे। इसके पूर्व 1877 ई. में यहाँ से 'हिन्दी प्रदीप' के प्रकाशन ने बड़ी भूमिका तैयार कर दी थी। हालाँकि इसके भी पहले सन 1874 में यहाँ से 'नाटक प्रकाश' जैसे मासिक पत्र प्रकाशित हो चुके थे, पर पं. बालकृष्ण भट्ट ने जब 'हिन्दी प्रदीप' निकालना शुरू किया तो यह हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में युगांतरकारी पड़ाव साबित

हुआ, जिसे सरस्वती ने एक परिणति दी। भट्ट जी पत्रकारिता और साहित्य, दोनों साथ-साथ साध रहे थे। सरल-सहज, मुहावरेदार और धारदार हिन्दी लिखने की प्रेरणा देने वालों में भट्ट जी अग्रणी थे। हिन्दी पत्रकारों ने उनसे यह सीख ली कि कैसे गुलामी के उस दौर में अँगरेजों के किसी भी अत्याचार का मुखर विरोध किया जाए। निस्संदेह गंभीर बातों को सहज शैली में प्रकट करने की कला के लिए हिन्दी पत्रकारिता बालकृष्ण भट्ट की ऋणी रहेगी।

दैनिक पत्रों में पराडकर जी के संपादन में 'आज' अखबार ने भाषा संस्कार की दृष्टि से अग्रणी भूमिका निभाई, तो यह अन्य राष्ट्रीय पत्रों के लिए भी उदाहरण बना। 'आज' की भूमिका वास्तव में हिन्दी पत्रकारिता की दिशा-दशा तय करने में मील के पत्थर जैसी है। 5 सितंबर, 1920 को इसका प्रकाशन ही युगांतरकारी था। इस समाचार पत्र के शुरू होने से कुछ ही समय पहले इसके संस्थापक शिवप्रसाद गुप्त विदेश यात्रा पर गए थे। इस पूरी यात्रा में उन्होंने अनुभव किया कि विदेशी लोग अपनी ही भाषा में बात करना पसंद करते हैं। ब्रिटेन के 'लंदन टाइम्स' समाचार पत्र ने उन पर गहरा असर डाला। इस यात्रा से उनके मन में तीव्र भावना पैदा हुई कि हिन्दी भाषा में भी एक ऐसा समाचार पत्र निकालने की जरूरत है, जो अपनी भाषा और अपने लोगों के प्रति गहरा सरोकारी अनुराग पैदा करने का काम करे। लोकमान्य तिलक से सलाह माँगी गई और 'आज' के प्रकाशन की भूमिका तैयार हुई। राष्ट्ररत्न शिवप्रसाद गुप्त और इसके संपादक बाबूराव विष्णु पराडकर ने कहा, ''हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्रता का उपार्जन करना होगा। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं और यही हमारा लक्ष्य है।'' 'आज' नाम रखने के पीछे भी कितनी सुविचारित नीति और कितने स्पष्ट उद्देश्य थे, उन्हें इसकी शुरुआत करने वालों के इस बयान में देखा जा सकता है, ''हमारा पत्र दैनिक है। प्रत्येक दिन इसका प्रकाशन होगा। संसार भर के नए-नए समाचार इसमें रहेंगे। दिन-प्रतिदिन संसार की बदलती हुई दशा में नए-नए विचार उपस्थित करने की आवश्यकता होगी। हम इस बात का साहस नहीं कर सकते कि हम सर्वकाल, सर्वदेश, सर्वावस्था के लिए जो उचित, युक्त और सत्य होगा, वही सर्वदा कहेंगे। हमें रोज-रोज अपना मत तत्काल स्थिर करके बड़ी-छोटी सब प्रकार की समस्याओं को समयानुसार हल करना होगा। जिस क्षण जैसी आवश्यकता पड़ेगी, उसी की पूर्ति का उपाय सोचना और प्रचार करना होगा। अतएव हम एक ही रोज की जिम्मेदारी प्रत्येक अंक में ले सकते हैं। वह जिम्मेदारी प्रत्येक दिन केवल आज की होगी, इस कारण इस पत्र का नाम 'आज' है।'' इसके संचालकों ने अपना कर्तव्य सूचना-पत्र बनाया और उसमें लिखा--''भारत के गौरव की वृद्धि और उसकी राजनीतिक उन्नति 'आज' का विशेष लक्ष्य होगा।.... हमारा मूल मंत्र है कि हमारे देश का गौरव बढ़े। यही हमारा राष्ट्रीय सिद्धांत है और यही हमारा राजनीतिक सिद्धांत है।.... हमारी संस्कृति, सभ्यता और परंपरा सबसे पहले है। इनकी रक्षा के लिए 'आज' कुछ भी कर सकता है।''

'आज' अखबार की इन प्रवृत्तियों और सरोकारों में दरअसल उत्तरप्रदेश ही नहीं, बल्कि देश की पत्रकारिता का पैमाना देखा जा सकता है। 'आज' ने लंबे समय तक अपने घोषित कर्तव्यों का पालन किया। हिन्दी के विकास में 'आज' का अवदान इस मायने में भी अविस्मरणीय रहेगा कि एक समय में नए-नए शब्दों के निर्माण में इसकी भूमिका टकसाल जैसी ही बन गई थी। असहयोग, असहकारिता, नौकरशाही, प्रधानमंत्री, मुद्रास्फीति, राष्ट्रपति, विधायक, सर्वश्री, साम्यवाद जैसे कई प्रचलित शब्द 'आज' के पृष्ठों से ही प्रचलित हुए। 'आज' की अगुआई में प्रदेश के अनेक पत्रों ने हिन्दी को सँवारने में कोई कोर-कसर नहीं रखी।

सचिवालय जैसे कई शब्द 'अमृत पत्रिका' के जरिए प्रचलन में आए, तो उस समय के दूसरे पत्रों ने भी हिन्दी जगत को अनेक नए शब्द दिए। लोकतंत्र, सुराज्य, वातावरण, संसद, काररवाई, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष, उच्चायुक्त, सत्र न्यायालय, मुद्राप्रसार जैसे अन्यान्य शब्दों को उत्तर प्रदेश के समाचार पत्रों ने ही प्रचलित किया। हिन्दी पत्रकारिता के शिल्प को माँजने में गणेश शंकर विद्यार्थी, खाडिलकर, ईश्वरचंद्र सिन्हा, मोहनलाल गुप्त, लक्ष्मीशंकर व्यास, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, ज्ञानचंद जैन, विद्याभास्कर, शंकर दयालु श्रीवास्तव, डा. धर्मवीर भारती, अज्ञेय, नरेश मेहता, कमलेश्वर, डा. लक्ष्मीकांत वर्मा आदि के अवदान को भुलाया नहीं जा सकता।

हिन्दी पत्रकारिता की भाषा और प्रस्तुति में आजादी के लगभग तीन दशक बाद तक काफी काम हुआ। उत्तर प्रदेश के प्रायः सभी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में एक सुनिश्चित स्टाइल शीट हुआ करती थी। अस्सी का दशक आते-आते भाषा-संस्कार की प्रवृत्ति क्षीण होने लगी। प्रभाष जोशी के संपादन में 'जनसत्ता' ने अवश्य समाचार पत्रों में शैली और भाषा की समृद्धि का एक अभियान-सा चलाया, पर यह दिल्ली का समाचार पत्र था। एक समय वह भी आया कि जिस 'आज' अखबार को भाषा-संस्कार की अगुआई का श्रेय प्राप्त था, वही भाषा के मामले में सबसे ज्यादा लापरवाही बरतने वाला अखबार बन गया। दिल्ली में 'हिंदुस्तान' जैसे क्रांतिधर्मा अखबार की अस्सी के दशक में जिस तरह से लाटरी वाले अखबार की छवि बनी, कुछ उसी तरह से आज की चायवालों के अखबार की छवि बनती गई। दिल्ली के कुछ अखबारों ने हिन्दी-अँगरेजी की खिचड़ी पकानी शुरू की तो इसका असर उत्तर प्रदेश के अखबारों पर भी पड़ा। स्ट्रेपटाप का स्टाइलिश लुक, ज्यादा फ्री एनवायरमेंट बच्चों के लिए ठीक नहीं, समर में कूल लुक के कपड़े पहनें... जैसे वाक्य लिखे जाने की होड़-सी लग गई। हिन्दी के बजाय अँगरेजी में स्तंभों के नाम देने का अब फैशन ही चल पड़ा है। लाइफ स्टाइल, क्राइम, टेक्नोलॉजी, हॉट सिटी जैसे शब्द तो मानो हिन्दी के ही बना दिए गए हैं। वास्तव में उत्तरप्रदेश की पत्रकारिता ने आज की तारीख में लगभग पूरी तरह से व्यावसायिकता का चोला पहन लिया है। पत्रकारी प्रवृत्तियों की निर्णायक भूमिका में बाजार आ गया है। अब विज्ञापन तय कर रहे हैं कि अखबार की भाषा क्या होगी और समाचार का प्रस्तुतीकरण कैसा होगा। भाषाई सरोकारों की पहचान अब राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के हित से ज्यादा विज्ञापनदाता और संपादक से ज्यादा प्रबंधन के दिशा निर्देश से ही की जा सकती है। हाल के दिनों में अँगरेजी की अति के चलते कुछ विवाद खड़े हुए तो कुछ अखबारों ने जरूर अँगरेजी के बजाए हिन्दी के शब्दों के पुनः प्रयोग पर बल देना शुरू किया है।

भाषा के मसले से जरा हटकर उत्तर प्रदेश के अखबारों की प्रवृत्तियों और सरोकारों की पहचान करनी हो तो समय-समय पर देश के पटल पर घटने वाली घटनाओं की रिपोर्टिंग पर भी निगाह दौड़ाने की जरूरत है। ज्यादा विस्तार में न जाकर कुछ खास घटनाओं पर भी निगाह डाल ली जाए तो चीजें काफी स्पष्ट हो जाती हैं। एक घटना ले सकते हैं आजादी के ठीक बाद की, जो इलाहाबाद में घटित हुई और कुंभ हादसे के रूप में जानी जाती है। इस घटना ने प्रदेश की पत्रकारिता में एक खास तेवर पैदा किया, जिस पर आज कम लोगों की निगाह जाती है। दूसरी घटना है आपातकाल की, जिसमें देश भर के अखबारों को सेंसरशिप से गुजरना पड़ा, और तीसरी घटना है बाबरी मस्जिद का ढाँचा ढहाए जाने की, जिसे अखबारों ने अपने-अपने नजरिये से खुलकर रिपोर्ट किया।

सन 1954 में हुआ इलाहाबाद का कुंभ हादसा कुंभ मेलों के इतिहास की सबसे बड़ी दुर्घटना है, जिसमें भगदड़ की वजह से एक हजार से ज्यादा लोग दब-कुचल कर मर गए थे। जिस दौर में सत्ता के प्रति आम अवाम का विश्वास अटूट किस्म का

था, समाचार पत्र भी पं. नेहरू की सरकार के प्रति सदाशयी भाव रखते थे, उस दौर में कुंभ हादसे पर जिस तरह लीक से हटकर प्रदेश के समाचार पत्रों ने पत्रकारिता का उदाहरण प्रस्तुत किया, वह भारतीय पत्रकारिता के लिए मील का पत्थर है। उस समय स्थानीय प्रशासन से लेकर पं. गोविंद बल्लभ पंत तक इस घटना को दबाने की फिराक थे, ताकि प्रधानमंत्री नेहरू तक सही जानकारी न पहुँच पाए। बावजूद इसके, घोर असुविधाओं के उस जमाने में भी इस हादसे की सही जानकारी लोगों तक पहुँचाने में इलाहाबाद से प्रकाशित उस समय के अखबारों की अच्छी भूमिका रही।

उस जमाने में जनसंचार माध्यमों का विकास बहुत कम था, इसलिए प्रशासन ने पूरी कोशिश यही की थी कि कुंभ हादसे को किसी बड़े हादसे के रूप में प्रचार न मिल पाए। दुर्घटना के दिन सरकार की ओर से जो प्रेसनोट जारी किया गया, उसमें कहा गया था कि सिर्फ कुछ भिखमंगे मरे हैं। लेकिन जब उन दिनों यहाँ से प्रकाशित होने वाले हिन्दी के 'अमृत पत्रिका' और 'भारत' तथा अँगरेजी के 'अमृत बाजार पत्रिका' और 'लीडर' जैसे अखबारों ने सप्रमाण खबरें प्रकाशित कीं कि कुंभ हादसे में हजार से ज्यादा लोग दब-कुचलकर मरे हैं, तो प्रशासन की जैसे नींद उड़ गई। 'अमृत पत्रिका' ने कुंभ हादसे की खबर सचित्र छापी थी। इन तस्वीरों की चर्चा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हुई। विदेशी अखबारों ने 'अमृत पत्रिका से साभार' लिखकर इन तस्वीरों को प्रकाशित किया। इन तस्वीरों ने प्रशासन द्वारा सिर्फ कुछ भिखमंगों के मारे जाने के प्रचार की कलई खोल दी थी। क्योंकि पत्रकारों ने कई ऐसी तस्वीरें अधिकारियों के सामने रखीं, जिनमें साफ दिखाई दे रहा था कि दबकर मरने वाली तमाम महिलाओं के गले और हाथ में जेवर थे और वे अच्छे घरों की दिख रही थीं। फोटो जर्नलिस्ट एन.एन. मुखर्जी ने जान पर खेलकर कुंभ दुर्घटना की तस्वीरें ली थीं। भगदड़ के समय मुखर्जी घटनास्थल पर ही उपस्थित थे। जब इस हादसे की फोटोग्राफी के लिए वे भीड़ में घुस गए तो उनके पत्रकार साथियों ने प्रेस कार्यालय पहुँचकर यही अंदेशा व्यक्त किया कि संभवतः वे भी कुचलकर मारे गए। लेकिन दोपहर बाद जब वे फटेहाल, पर सही-सलामत कैमरे के साथ 'अमृत पत्रिका' के कार्यालय में हाजिर हुए तो सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अखबार के मालिक तरुण कांति घोष ने तो खुशी से उन्हें उठा लिया और चिल्ला पड़े -- ''नेपू जिंदा आ गया।'' वास्तव में इस घटना से उस समय के पत्रकारों की अपने काम के प्रति लगन और प्रतिबद्धता का पता तो चलता ही है; मालिक, संपादक और पत्रकारों के बीच के आत्मीय रिश्तों का भी अंदाजा मिलता है।

अखबारों की सजगता के कारण ही इस हादसे को प्रशासन सामान्य घटना नहीं बना सका। दुर्घटना के दूसरे दिन प्रशासन ने गुपचुप तरीके से लाशों के ढेर लगा लगाकर उन पर पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दी तो 'अमृत पत्रिका' के फोटोग्राफर ने बड़ी चालाकी से इसकी भी तस्वीरें खींच ली। जब दूसरे दिन शवों को जलाने की तस्वीर पत्रिका में छपी तो प्रशासन को मानो साँप सूँघ गया। तत्कालीन मुख्यमंत्री पं. गोविन्द बल्लभ पंत तक गुस्से से उबल पड़े और उनके मुँह से निकल पड़ा -- ''हरामजादा फोटोग्राफर कहाँ है?''

ये अखबार ही थे, जिनकी वजह से पं. जवाहरलाल नेहरू तक सही सूचनाएँ पहुँच पाईं और उन्होंने संवेदना व्यक्त करते हुए कहा -- ''देश के दूर-दराज के हिस्सों से आए लोगों के दुखों को देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है। मैं उन सबके लिए हार्दिक संवेदना व्यक्त करता हूँ।'' यह उत्तरप्रदेश के अखबारों की रिपोर्टिंग का ही दबाव था कि कुंभ हादसे पर आजाद भारत में पहली बार 'कुंभ इन्क्वायरी कमेटी' बैठाई गई। इसी के बाद मेले की व्यवस्था के लिए आगामी योजनाएँ भी बनाई जाने लगीं। इस घटना के बाद प्रदेश के समाचार पत्रों में समाचारों को अलग तेवर के साथ प्रस्तुत करने की पेशेवराना प्रवृत्ति पनपती हुई भी

देखी जा सकती है। दबी हुई खबरों को बाहर निकालने के लिए खतरों से खेलने की साहसिक प्रवृत्ति को इस घटना की रिपोर्टिंग ने बढ़ावा दिया। इसके बाद के लगभग एक-डेढ़ दशक के समय को उत्तर प्रदेश की पत्रकारिता की दृष्टि से नेहरूवाद से मोहभंग के तौर पर देखा जा सकता है। आजादी के लगभग एक दशक बाद तक नेहरू की पंचवर्षीय योजनाओं और उद्योगीकरण की नीतियों में लोग अपने सपनों को पूरा होते देख रहे थे, पर इसके बाद के समय में चीन का आक्रमण, नौकरशाही का विद्रूप और भ्रष्टाचार की घटनाओं ने लोगों में आक्रोश भरना शुरू कर दिया था। नतीजतन, उत्तरप्रदेश के अखबारों ने भी जनता की आवाज को मुखर करना शुरू किया। नेहरू की नीतियों पर पुनर्विचार की जरूरत अखबारों के पन्नों पर दिखाई देने लगी तो डा. राममनोहर लोहिया के समाजवाद का एक नया चेहरा भी उभरने को आतुर दिख रहा था। सन 1964 में पं. नेहरू का निधन हुआ तो प्रदेश के अखबार शोक में आकंठ डूबते दिखे। इसके बाद बने नए प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के 'जय जवान जय किसान' के नारे में नई संभावनाएँ देखी जाने लगीं।

उत्तरप्रदेश के अखबारों के सरोकारों का यह एक पक्ष है। इसके ठीक एक दशक बाद आपातकाल के समय का एक दूसरा भयभीत चेहरा भी दिखाई देता है। दिलचस्प बात यह जरूर है कि आपातकाल में जिस तरह से राष्ट्रीय अखबार इंदिरा सरकार के आगे साष्टांग दण्डवत की मुद्रा में रहे, उसकी तुलना में उत्तरप्रदेश के अखबारों ने आपातकाल के विरोध का अपना-अपना तरीका अपनाया। बड़े अखबारों में 'आज' की स्थिति यह रही कि इसने आपातकाल का न विरोध किया न समर्थन। हालाँकि 'समय' और 'गांडीव' जैसे अखबारों ने आपातकाल के विरोध का अलग ही तरीका अपनाया था। जौनपुर से आजादी के पहले से (1927 से) निकलने वाले अखबार 'समय' ने आपातकाल के दौरान संपादकीय स्तंभ खाली छोड़कर विरोध प्रकट किया था। आपातकाल के बाद इस अखबार ने एक दिलचस्प सर्वेक्षण यह कराया कि आपातकाल के दौरान ऐसी कौन-कौन सी घटनाएँ हुईं, जिन्हें अखबारों ने नहीं छापा। अभय प्रताप ने 'हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास' पुस्तक में इस अखबार के सर्वेक्षण से निकली एक साधारण-सी घटना का जिक्र किया है, जिससे यह पता चलता है कि प्रशासन का कैसा दमनकारी रवैया उस दौर में चल रहा था।

घटना यह थी कि चाबी बनाने वाले जौनपुर के एक कारीगर को पुलिस ने मीसा में केवल इसलिए बंद कर दिया था कि उस कारीगर से जब पुलिस ने एक जगह पर जाकर ताले की चाबी बनाने को कहा तो उसने जवाब में बस इतना कह दिया कि पुलिस के लोग तो हमें कहीं जाकर चाबी बनाने से मना करते हैं और खुद ही ऐसा काम करने को कह रहे हैं। बनारस के 'गांडीव' ने आपातकाल का अपने तरीके से प्रभावी विरोध किया था। इस अखबार ने संपादकीय स्तंभ खाली छोड़ने के बजाए पहले पृष्ठ पर संपादकीय लिखा और 108 बार 'श्रीमती इंदिरा गांधी जिंदाबाद' लिखकर पूरा स्तंभ भर दिया और नीचे संपादक का नाम लिख दिया।

यह जानना रोचक है कि 25-26 जून 1975 की रात में जब आपातकाल की घोषणा हुई तब साथ में अखबारों पर भी सेंसरशिप लागू कर दी गई। अखबारों के कार्यालयों पर पहरे बैठा दिए गए। लेकिन पहला दिन होने से प्रशासन की थोड़ी-सी लापरवाही का भी उत्तरप्रदेश के अखबारों ने भरपूर फायदा उठाया और सेंसरशिप और तमाम तरह के सरकारी प्रतिबंधों का खुलासा कर दिया। नतीजा यह हुआ कि कई अखबारों को प्रशासन की प्रताड़ना का शिकार होना पड़ा। कानपुर से छपने वाले 'दैनिक जागरण' ने 26 जून के अंक में संपादकीय स्तंभ वाली जगह को खाली छोड़कर लिख दिया था -- ''नया लोकतंत्र,

सेंसरशिप लागू है, कृपया शांत रहें।'' परिणाम यह हुआ कि कानपुर में अखबार के संस्थापक पूर्णचंद्र गुप्त पुत्र नरेंद्र मोहन और महेंद्र मोहन के साथ गिरफ्तार कर लिए गए। बाद में इस समूह के ही राज्यसभा सांसद रहे गुरुदेव गुप्त की कोशिशों के बाद राज्यपाल के हस्तक्षेप पर ये लोग छूटे और जागरण ने भी फूँक-फूँककर कदम रखने शुरू किए। छोटे अखबारों पर प्रशासन की निगाह कम पड़ रही थी, तो उन्होंने इसका फायदा उठाते हुए अपने तरीके से आपातकाल के खिलाफ माहौल बनाया। आपातकाल को संत विनोबा भावे ने 'अनुशासन पर्व' कहा तो उत्तरप्रदेश के समाचार पत्रों में इसकी खूब चर्चा हुई। यह बयान भी चर्चा का विषय बना कि ''आप भारत का इतिहास उठाकर देख लें, संतों ने अक्सर कुशासकों की ढाल का काम किया है।'' कांग्रेस अध्यक्ष देवकांत बरुआ ने जब कहा कि 'इंदिरा इज इंडिया', तो इसने बहस की आग में घी डालने का काम किया।

जाने-माने पत्रकार शंभूनाथ शुक्ल आपातकाल के दिनों का अपना एक अलग रोचक अनुभव बताते हैं। वे कानपुर में रहते हुए नया मोर्चा नाम से साप्ताहिक अखबार निकाला करते थे। यह अखबार कानपुर का जाना-पहचाना नाम बन चुका था। आपातकाल शुरू होते ही उनके साथी भूमिगत हो गए। पूरे 19 महीने तक कौन कहाँ रहा, किसी को कुछ पता नहीं था, पर आपातकाल खत्म हुआ और खुली हवा में साँस लेने के लिए लोग बाहर दिखना शुरू हुए तो पता चला कि नई उमर के उनके सभी पत्रकार साथी विवाह के बंधनों में बँध चुके थे। शंभूनाथ के मुताबिक उस समय पुलिस और नौकरशाहों के पास अथाह शक्ति थी। कोई छोटी-सी बात पर भी विरोध कर दे, तो मीसा लगाकर अंदर कर दिया जाता था। हालाँकि आम लोगों को इससे कोई मतलब नहीं था। कानपुर जैसी जगह में सब कुछ सामान्य था। तब राशन और चीनी सरकारी दुकानों पर मिलते थे। सभी दुकानें समय पर खुलने लगीं। सरकार के डंडे की वजह से कालाबाजारी पर नियंत्रण लग गया। गुंडे-बदमाश भूमिगत हो गए।

कुल मिलाकर आपातकाल उत्तर प्रदेश की पत्रकारिता के लिए भी कठिन समय था। अखबार सरकार से दो-दो हाथ करने के बजाए बीच का ही रास्ता तलाश कर चल रहे थे। सत्ता प्रतिष्ठान की सेंसरशिप के चलते पूरे देश की तरह उत्तरप्रदेश की पत्रकारिता का भी हुलिया काफी कुछ बिगड़ चुका था। श्रीमती इंदिरा गाँधी का आतंक संपादकों के सिर चढ़कर बोल रहा था। इन सारी स्थितियों के बीच यह जरूर कहा जा सकता है कि उत्तरप्रदेश के छोटे और मझोले समाचार पत्र अपने विरोध को अभिव्यक्ति देने की राह तलाशने में एकदम निराश नहीं हुए थे।

उत्तरप्रदेश की पत्रकारिता में अयोध्या की बाबरी मस्जिद गिराए जाने की घटना उल्लेखनीय है, जबकि यहाँ के अखबार पालों में बँटते नजर आए। 6 दिसंबर, 1992 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद गिराए जाने की घटना ने पूरे देश को झकझोर दिया था। इस घटना का प्रभाव मात्र एक क्षेत्र, प्रदेश या देश तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि इसकी प्रतिध्वनि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी काफी दिनों तक सुनाई दी थी। अयोध्या उत्तरप्रदेश में है, तो जाहिर तौर पर यहाँ के लोगों के साथ ही यहाँ के अखबार भी इस घटना के प्रति ज्यादा संवेदनशील रहे। अयोध्या कांड की खबरें उत्तरप्रदेश के समाचार पत्रों ने बढ़-चढ़कर दीं। घटना के बाद पूरे दिसंबर भर और बाद में भी महीनों इससे जुड़ी खबरें किसी-न-किसी रूप में यहाँ के अखबारों की सुर्खियाँ बनती रहीं। लेख, फीचर, फोटो फीचर, विशेष रिपोर्ट के रूप में अखबारों में अयोध्या कांड पर सामग्री की भरमार रही। मानना पड़ेगा कि अयोध्या से सटे फैजाबाद से छपने वाले 'जनमोर्चा' ने इस मुद्दे पर काफी संतुलित रिपोर्टिंग की। विवाद के हर पहलू पर इस अखबार ने सधी हुई जानकारियाँ दीं। शीतला सिंह के संपादन में

संतुलित दृष्टि दिखाई देती है। इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले मुख्य रूप से दो दैनिक पत्र थे 'अमृत प्रभात' और 'आज'। वैसे 'आज' का मुख्यालय बनारस था। 'दैनिक जागरण', 'स्वतंत्र भारत' जैसे दैनिक पत्रों ने सिर्फ स्थानीय समाचारों के लिए कुछ पृष्ठ सुरक्षित कर रखा था। अयोध्या कांड इतना संवेदनशील मुद्दा था कि इसकी रिपोर्टिंग को लेकर 'आज' जैसे अखबार पर सांप्रदायिक विद्वेष फैलाने तक का आरोप लगा। 'आज' के कुछ अंक भी प्रशासन द्वारा जब्त कर लिए गए थे। 'अमृत प्रभात' की रिपोर्टिंग को संतुलित माना गया। वैसे इन दोनों ही समाचार पत्रों में इस घटना से जुड़ी हर चीज को कवर करने की होड़-सी लगी हुई थी। माहौल ऐसा बन गया था कि लोग हर सुबह बेसब्री से अखबार का इंतजार करते थे। बनारस और इलाहाबाद से प्रकाशित इन दोनों ही दैनिकों की उस दौरान खूब माँग बढ़ी। अखबारों की प्रतियाँ ब्लैक तक में बेची गईं। स्थिति यह थी कि अयोध्या कांड के तुरंत बाद के कुछ दिनों में ब्लैक मार्केटिंग और सांप्रदायिक माहौल के चलते नगर के विभिन्न कार्यालयों में भी समाचार पत्रों की प्रतियाँ नहीं पहुँच सकीं। इस अवधि के अंक अखबारों के कार्यालयों तक में उपलब्ध नहीं हैं।

12 दिसंबर, 1992 को 'अमृत प्रभात' के पृष्ठ-5, जो समाचारों का पृष्ठ था, पर एक विशेष लेख सबसे ऊपर आठ कालम में 'इमरजेंसी के भूखे लोग उसका स्वाद भूल गए शायद' शीर्षक से प्रकाशित किया गया है। इसके लेखक थे -- दीपेश। इस लेख के अनुसार -- ''यह धार्मिक उन्माद अत्यंत खतरनाक होता है, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि इसके शिकार निचले तबके के लोग होते हैं, जिनको दो दिन काम न करने पर भूखों मरने की नौबत आ जाती है। दर्जी, चूड़ीहारा, साइकिल, स्कूटर मिस्त्री, ठेला लगाने वाला, रिक्शे-ताँगे का चालक, सब्जी लगाने वाला, जो इस धर्मोन्माद के प्रभाव में कभी नहीं आना चाहते, वे ही इसके शिकार हो जाते हैं। यह उक्ति ऐसे समय चरितार्थ होती है -- ''और करै अपराध कोऊ, और पाव फल भोग, अति विचित्र भगवंत गति को जग जानै जोग।'' इमरजेंसी में भी सबसे अधिक शिकार ऐसे ही लोग होते हैं। ... अतः ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'इमरजेंसी' जैसा दुर्दिन वह न लाए, वरना हजारों-लाखों मौतों की शिनाख्त भी ढूँढे नहीं मिलेगी, क्योंकि सुरक्षा बल इसके लिए जिम्मेदार नहीं रह जाते। रातों-रात लाशें गायब हो जाती हैं और लोग बिलखकर रह जाते हैं।''

दूसरी तरफ 'आज' अखबार का दृष्टिकोण देखिए। 'आज' के 14 दिसंबर, 1992 के अंक में एक महत्वपूर्ण समाचार विश्लेषण विविध समाचारों के पृष्ठ-5 पर प्रकाशित किया गया है। इसका शीर्षक है -- 'आगे रास्ता पथरीला हो सकता है।' इस विश्लेषण के अनुसार -- ''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल पर प्रतिबंध के दूरगामी परिणाम होंगे। हिंदू जागरण के रूप में उदित सूर्य की तपन अंकुश की रस्सियों को झुलसाकर कमजोर कर सकती है और सदियों का स्वर्णिम इतिहास लिए विश्व में स्वाधीनता का मंत्र फूँकने वाली कांग्रेस के लिए आगे का रास्ता पथरीला हो सकता है। देश के लिए बहुत कुछ करने का संकल्प रखने वाली इंदिरा गांधी के आपातकाल के अंकुश को जनता ने बखूबी नकार दिया था, उन्हें गद्दी से हटना पड़ा था, क्योंकि भारतीय अवाम की नब्ज ही कुछ ऐसी है जो कि किसी दबाव को अधिक समय तक बर्दाश्त नहीं कर पाती। संघ तो प्रतिबंधों के आघात को पिछले सात दशक से झेल रहा है। लेकिन विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल अभी कच्ची उम्र में हैं। कच्ची उम्र की बंदिश जवानी में विद्रोह बन जाती है। उस ज्वालामुखी का विस्फोट सत्ता के मजबूत खंभों को कभी भी ढहा सकता है।....

धर्म निरपेक्षता के नाम पर सभी राजनीतिक दल हिंदुओं के हितों को हमेशा नजरअंदाज करते रहे। वोट बैंक की खातिर अल्पसंख्यकों की सभी

माँगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पूरा करते रहे। संघ ने इसे तुष्टीकरण का नाम देकर हिंदुओं को एक मंच पर लाने का एक मजबूत काम किया।... इतिहास गवाह है कि हर प्रतिबंध के बाद संघ हिंदुत्व की नई ताकत बनकर उभरा।...

....संघ ने अपनी बेमिसाल ताकत का अहसास छह दिसंबर को कराया, भले ही उसके परिणाम अनिष्टकारी रहे हों। .....जब भाजपा ने जन्मभूमि आंदोलन की कमान सँभाली तो विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल उसकी पहचान और पर्याय बन गए थे। इस पहचान की शिनाख्त का अंकुश शायद नई क्रांति को जन्म देगा और गैर भाजपाई दलों के मन में पनप रही भ्रांतियाँ ढेर हो जाएँगी।'' स्पष्ट रूप से राम मंदिर विवाद में 'आज' की भूमिका विवादास्पद रही और उस पर पक्षपात के कई आरोप लगे। 'अमृत प्रभात' की भूमिका इस मामले में काफी संतुलित रही।

इस पूरे परिप्रेक्ष्य में उत्तराखंड की पत्रकारिता को भी अलग करके नहीं देखा जा सकता। यह जरूर है कि पहाड़ के इलाकों की समस्याएँ वहाँ के अखबारों में ज्यादा मुखर होती रही हैं। सन 1939 से आजादी के बाद तक प्रकाशित 'कर्मभूमि' पत्र ने ब्रिटिश गढ़वाल तथा टिहरी रियासत दोनों में राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक चेतना फैलाने का कार्य किया। सन 1976 में उत्तर उजाला दैनिक पत्र हल्द्वानी से प्रारंभ हुआ, जो कुछ अलग तेवर का अखबार है और शुरू से ही सीमित साधनों में मौजूदा दौर के साथ कदमताल कर रहा है। उत्तराखंड की पत्रकारिता का कोई अलग चेहरा न होते हुए भी पृथक उत्तराखंड राज्य की माँग के आंदोलन के दौर में यहाँ की पत्रकारिता का कुछ अलग रूप जरूर देखा जा सकता है। उस दौर में पहाड़ी इलाकों में ज्यादातर साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएँ ही निकलती थीं। देहरादून से निकलने वाले अखबारों की पहुँच मुख्य शहर तक ही थी। दिल्ली के अखबार यहाँ की समस्याओं से अनजान थे या जानबूझकर ध्यान नहीं देना चाहते थे। दिलचस्प है कि चिपको आंदोलन का समाचार भी सबसे पहले एक छोटे साप्ताहिक 'युगवाणी' में छपा। इसके बाद ही देश के अन्य अखबारों ने इसे नोटिस किया।

सन 1973 का विश्वविद्यालय आंदोलन बड़ी घटना थी, जिसके बाद गढ़वाल और कुमाऊँ विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। सन 1980 के आसपास तक पृथक राज्य की माँग जोर पकड़ने लगी। तब तक पहाड़ के पर्यावरणी और सामाजिक आंदोलनों के मुद्दे भी लोगों का ध्यान खींचने लगे थे। खबरों की भूख में मेरठ और बरेली के अखबारों ने सबसे पहले पहाड़ों का रुख किया। 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' के संस्करण निकलने शुरू हो गए। बहरहाल, अलग राज्य की माँग के आंदोलन में बाहर के ज्यादातर अखबारों ने लोगों का हित कम, अपना व्यावसायिक हित ज्यादा देखा। जैसे-जैसे उत्तराखंड आंदोलन जोर पकड़ने लगा, छात्रों के साथ महिलाएँ भी आंदोलन में शामिल होने लगीं, तो अखबारों ने भी मिर्च-मसाला लगाकर बढ़ा-चढ़ाकर सनसनीखेज खबरें देने में अपना फायदा देखा। मौका देखकर कई अखबारों ने अपने पाले भी बदले। कभी आंदोलन के पक्ष में तो कभी यथास्थिति बनाए रखने के पक्ष में। एक समय बाद आरक्षण आंदोलन पूरी तरह से उत्तराखंड राज्य की माँग के आंदोलन में बदल गया और अंततः पृथक राज्य बन भी गया, पर इस पूरे मुद्दे पर राज्य की पत्रकारिता बँटी हुई दिखाई दी और उसकी भूमिका निष्पक्ष नहीं कही जा सकती।

उत्तरप्रदेश और उत्तराखंड की पत्रकारिता की वर्तमान समय की प्रवृत्तियों और सरोकारों की बात करें तो इसे बाकी देश की पत्रकारिता से ज्यादा अलग करके नहीं देखा जा सकता। केवल खबरों की स्थानीयता का अंतर देखा जा सकता है, बाकी अधिकतर चीजें एक जैसी हैं। सबसे बड़ी वजह यह है कि अब पूरे प्रदेश में कुछ खास अखबारों का वर्चस्व है। छोटे अखबारों का अस्तित्व समाप्तप्राय

है। इने गिने अखबारों के तमाम शहरों से स्थानीय संस्करण छपने लगे हैं। बगैर करोड़ों की पूँजी के अब कोई अखबार निकालने की कल्पना भी नहीं कर सकता। इन वजहों से छोटी-बड़ी सभी जगहों में अब पत्रकारिता का एक-सा ही चेहरा दिखाई दे रहा है। अंतर है तो सिर्फ स्थानीय स्तर पर कुछ खबरों के चयन का। प्रादेशिक अखबारों के तौर पर दैनिक जागरण और अमर उजाला का विशेष उल्लेख किया जा सकता है, पर ये भी अब बड़े घराने हैं। समाचारों में प्रादेशिकता जरूर दिखाई देती है, पर बाकी चीजों में ये भी देश के दूसरे अखबारों से अलग नहीं हैं। इन अखबारों ने गाँव-गिराँव की सूचनाएँ आमजन को आसानी से उपलब्ध तो कराई हैं, पर प्रदेश की सांस्कृतिक विविधताओं और पहचान को देश के बड़े शहरों के चश्मे से ही देखने का काम ज्यादा किया है। जिस उत्तरप्रदेश की पत्र-पत्रिकाओं ने कभी हिन्दी भाषा की समृद्धि में सर्वाधिक योगदान दिया था, उसी प्रदेश की आज की पत्रकारिता का हाल यह है कि भाँति-भाँति स्तंभों के नाम अँगरेजी में रखे जा रहे हैं। टीवी चैनलों ने भेड़चाल की पत्रकारिता का माहौल और पुख्ता किया है।

प्रदेश की वर्तमान पत्रकारिता का हाल यह है कि अखबार के पन्नों पर सामाजिक सरोकार भी अगर दिखाई देते हैं तो व्यावसायिक हितों के साथ। एक्सक्लूसिव खबरों का दौर जैसे खत्म-सा हो गया है। पत्रकार मैदान में कम उतर रहे हैं और टीवी चैनलों को देखकर खबरें ज्यादा बनाई जा रही हैं। एक समय था जबकि टीवी चैनल अखबारों की खबरें पढ़कर अपने फालोअप कार्यक्रम बनाते थे, पर अब उलटा है। तकनीकी साधनों ने सहूलियतें तो बढ़ाई हैं, पर अखबार जनोन्मुखी कम और विज्ञापनोन्मुखी ज्यादा हो चले हैं। ऐसा नहीं है कि अच्छे पत्रकारों की कमी है। असल में मालिकान प्रभावी भूमिका खुद ले चुके हैं और संपादक मैनेजर का किरदार ज्यादा निभाने लगे हैं। इस मामले में वह बात पूरे देश की ही पत्रकारिता के लिए आज भी दुरुस्त है, जो स्टेट्समैन के अंतिम अँगरेज संपादक चार्लटन ने अपने विदाई भाषण में कही थी -- ''भारत में अच्छे संवाददाताओं की कमी नहीं है। कमी है तो सिर्फ संपादकों की।''

इस लेख को खत्म करते-करते एक और बात पर जरूर ध्यान जा रहा है कि उत्तरप्रदेश की पत्रकारिता की हालत दयनीय करने में मालिकों के व्यावसायिक स्वार्थों के अलावा पत्रकारों के खुद का भी काफी योगदान है। उत्तरप्रदेश में पत्रकारों की वर्तमान स्थिति किन्हीं अर्थों में मजदूरों से ज्यादा बेहतर नहीं रह गई है। ऊपरी स्तर के केवल कुछ पत्रकारों को ठीक-ठाक वेतन मिल पाता है, बाकी ज्यादातर की हालत यह है कि वे पत्रकारिता के भरोसे अपनी गृहस्थी चलाने की स्थिति में नहीं हैं। व्यावसायिक पत्रकारिता का लाभ सिर्फ मालिकों तक सीमित रह गया है। एक भी मीडिया घराने ने किसी भी अनुशंसित वेतनमान को ईमानदारी से लागू नहीं किया है। ऐसे में, जब रोटी के लाले हों तो किसी पत्रकार से कितनी ईमानदार पत्रकारिता की उम्मीद की जा सकती है? ऊपर से मुसीबत यह कि किसी पत्रकार के लिए अपनी मर्जी से सूचनाएँ निकालने की आजादी भी अब न के बराबर रह गई है। सही कहा जाए तो वर्तमान में शोषण के जितने शिकार पत्रकार हैं, उतने शायद ही किसी और क्षेत्र के कर्मचारी होंगे। अन्य क्षेत्रों की जरा-सी बात भी चैनलों और पत्र-पत्रिकाओं में जोर-शोर से उठाई जाने लगती है, पर पत्रकारों के शोषण की बातें किसी चैनल या अखबार में नहीं छप सकतीं। अजब विडंबना है कि दूसरों के शोषण की आवाज बुलंद करने वाला पत्रकार अपने ही शोषण की आवाज नहीं उठा सकता। पत्रकारों के संघठन समाप्तप्राय हैं, तो जो भी इक्का-दुक्का पत्रकार विरोध का कोई स्वर उठाते हैं, वे नौकरी से निकाल दिए जाते हैं। वास्तव में इसे हिन्दी पत्रकारिता का अंधकार-युग कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

(Email - santsameer@gmail.com)

मूर्धन्य संपादक

जी. परमेश्वरन पिल्लै

■ संतोष कुमार शुक्ल

देश के स्वतंत्रता संग्राम के प्रारम्भिक दौर में भारत में अँगरेजी पत्रकारिता का वर्चस्व था। बड़े-बड़े शहर इसके केन्द्र बिन्दु थे और यहीं से अच्छे अखबार प्रकाशित होते थे, जिनके द्वारा जन जागरण का संदेश फैलाया जाता था। उसी समय चेन्नै से समाचार पत्र 'मद्रास स्टेण्डर्ड' निकला था जिसके सम्पादक श्री जी. परमेश्वरन पिल्लै थे जिन्होंने अपना जीवन स्वयं मेहनत, लगन और त्याग से गढ़ा था। वे सरल और प्रवाहमय आकर्षक अँगरेजी लिखने में माहिर थे। देशभक्त संपादक थे। उनकी विद्वत्ता की ख्याति पूरे दक्षिण भारत में व्याप्त थी। सभी लोग उन्हें सम्मान से जी.पी. कहा करते थे।

श्री पिल्लै का जन्म त्रावणकोर के निकट पल्लिपुरम गाँव में 26 फरवरी 1864 में हुआ था और 39 वर्ष की उम्र में उनकी मृत्यु 21 मई 1903 में हो गई थी। वे कलम के धनी पत्रकार थे। उनकी समझ पैनी और मौलिक थी। वे सही मायने में श्रमजीवी पत्रकार भी थे। बचपन में ही उनके माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण उनका लालन-पालन उनकी बूढ़ी चाची ने बड़े प्यार से किया था। वे विलक्षण प्रतिभावान छात्र थे। निर्धनता का उनकी तीव्र बुद्धि पर कोई प्रभाव नहीं था। उन्हें पढ़ाई और खेलकूद में बराबर की रुचि थी। पढ़ने के समय ध्यानमग्न होकर पढ़ते थे और खेल के समय खुलकर खेलते थे। जब वे बड़े हुए तब उन्हें जानकर आश्चर्य हुआ कि त्रावणकोर रियासत में ऐसा प्रशासन चल रहा है जो विदेशियों के हाथ में है। जिन्हें इस देश की धरती की संतानों के उत्थान की कोई चिन्ता नहीं है। ज्यों ज्यों वे बड़े हुए उन्हें यही चिन्ता सताने लगी। इस प्रकार उनकी रगों में देशप्रेम की भावना दिनों दिन प्रगाढ़ होती गई। इसी भावना की अभिव्यक्ति उन्होंने, जब वे एफ.ए. में थे, एक लेख के माध्यम से व्यक्त कर डाली। इसके बाद तो उनके ऐसे ही राजनीतिक लेख हफ्ते में तीन बार छपने वाले 'वेस्टर्न स्टार' समाचार पत्र में नियमित रूप में छपने लगे। उनके इन सनसनीखेज लेखों को पढ़कर रियासत के दीवान ने महाराजा कालेज के प्राचार्य श्री रोस को आदेश दिया कि विद्यार्थी पिल्लै और उनके दो साथियों को कालेज से निष्कासित कर दिया जाए। प्राचार्य, दोनों साथियों को तो नहीं निकाल पाए क्योंकि वे उच्चपदस्थ परिवारों की सन्तान थे, परन्तु श्री पिल्लै को दुखी मन से निकालते हुए उसे बहुत अच्छा चारित्रिक प्रमाण पत्र भी दे दिया ताकि उसका नुकसान न हो और अन्यत्र उसे दाखिला मिलने में कठिनाई न हो। श्री पिल्लै के आलोचनात्मक विचारों से रियासत का वातावरण इतना गरमा गया था कि अधिकारियों को उनका रियासत में रहना ही पसन्द नहीं आ रहा था। जब श्री पिल्लै को अधिकारियों की यह भावना ज्ञात हुई तब वे स्वयं आगे की पढ़ाई जारी रखने के उद्देश्य से चेन्नै चले गए। वहाँ भी उनका लेखन कार्य चालू रहा। उनके लेख चेन्नै से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों में प्रकाशित होने लगे। उनकी कलम से अँगरेजी भाषा झरने के समान प्रवाहित होती थी। भाषा पर उनका इतना अधिकार था और उनका शब्दकोश

इतना व्यापक था कि सभी को इस बात का आश्चर्य था कि एक नवयुवक ऐसी ओजस्वी और स्वाभाविक भाषा कैसे लिख लेता है। चेन्नै में रहते हुए श्री पिल्लै ने त्रावणकोर के महाराजा को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जिसमें माँग की गई थी कि रियासत के प्रशासन में कैसे सुधार करना आवश्यक है। इसके लिए राजनीतिक मुहिम भी चलाई गई।

उस समय चेन्नै से एकमात्र राष्ट्रीय समाचार पत्र 'हिन्दू' निकल रहा था। चेन्नै के शेष दो समाचार पत्र 'मद्रास टाइम्स' और 'मद्रास मेल' इलाहाबाद के 'पायोनियर' की भाँति अँगरेजों के भक्त थे। 'मद्रास स्टेण्डर्ड' का प्रकाशन 1877 में एंग्लो इंडियन समाचार पत्र के रूप में जरूर हुआ था, परन्तु 1892 में 21 वर्ष की आयु में जब श्री पिल्लै ने इसे सम्हाला तब इसका स्वर बिलकुल बदल दिया गया और यह प्रखर राष्ट्रीयता की दृष्टि से 'हिन्दू' से भी आगे निकल गया।

जब श्री पिल्लै 'मद्रास स्टेण्डर्ड' के संपादक बने तब यह पत्र हफ्ते में तीन बार प्रकाशित होता था। उसे उन्होंने पहले साप्ताहिक और फिर दैनिक में परिवर्तित किया। उसकी ख्याति बढ़ाने के उद्देश्य से अनेक रोचक फीचर प्रारम्भ किए। वे संपादकीय स्वयं लिखते थे और तत्कालीन ज्वलंत समस्याओं का विश्लेषण कर मौलिक सुझाव प्रस्तुत करते थे। यह श्री पिल्लै के ही बस की बात थी कि उन्होंने सर्वप्रथम 'मद्रास स्टेण्डर्ड' में प्रमुख व्यक्तियों के चारित्रिक रेखांकन का कालम प्रारम्भ कर उसे प्रचलित किया। यह उनकी मौलिक सोच का ही परिणाम था कि उन्होंने स्वयं दो और नए स्तम्भ लिखना प्रारम्भ किया जो सामान्य पाठकों को बहुत पसन्द आए। इनके नाम थे 'द टेलीपैथिक इन्टर न्यूज' और 'अवर पोर्ट्रेट गैलरी'। इनकी शैली आकर्षक और प्रभावशाली हुआ करती थी और पाठकों को उनमें सजीवता और नवीनता मिलती थी। पत्रकार और संपादक के रूप में उन्होंने लेखन को सदैव चापलूसी और घटिया स्तर से दूर रखा। हमेशा अपने पाठकों को स्वतंत्र सोच और विषय की गहराई तक पैठने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने कभी भी खुशामद पसन्द नहीं की और अपने लेखन को भी इससे बचाया। वे विषयवस्तु के अनुरूप शैली का प्रयोग करते थे। उन्हें जो परिपाटी पसन्द नहीं आती थी, उसका वे कारण बताते हुए विरोध करते थे। जिस प्रकार बंगाल में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सेवानिवृत्त राज्यपालों के सम्मान में आयोजित बैठकों का विरोध किया था, उसी प्रकार चेन्नै में श्री पिल्लै ने दासता की अनेक परिपाटियों का खुलकर विरोध कर नवजागरण के बीज बोए थे। उन्होंने मद्रास के राज्यपाल वेनलाक के बदनाम प्रशासन का कड़े शब्दों में विरोध कर सभी को चौंका दिया था। वे सामाजिक सुधार के कार्यों में भी रुचि लेते थे। चेन्नै में उन्होंने मद्रास सोशल रिफार्म एसोसिएशन स्थापित किया था। वे इंडियन टेम्परेन्स एसोसिएशन के अध्यक्ष भी थे।

जब दक्षिण आफ्रिका में बसे भारतीयों पर हो रही ज्यादतियों के विरोध में महात्मा गांधी आन्दोलन चला रहे थे तब 'मद्रास स्टेण्डर्ड' ने महात्मा गांधी की विचारधारा का जोरदार समर्थन किया था और दक्षिण आफ्रिका में प्रवासी भारतीयों के प्रति किए जा रहे सौतेले व्यवहार की अपने लेखों में भर्त्सना की थी। बाद में जब पिल्लै की महात्मा गांधी से भेंट हुई तब महात्मा गांधी ने 'मद्रास स्टेण्डर्ड' की प्रशंसा करते हुए उसका आभार माना था। उस जमाने का ऐसा शायद ही कोई राष्ट्रीय विचारधारा का भारतीय संपादक होगा जिसके खिलाफ मानहानि, देशद्रोह आदि के मुकदमे न चले हों। तब श्री पिल्लै कैसे बच सकते थे। चेन्नै के एक नामी वकील भाष्यम एक टिप्पणी पर क्रोधित हो गए। उन्होंने मानहानि का मुकदमा चलाने को नोटिस जारी करा दिया। जब श्री पिल्लै को ज्ञात हुआ तब उन्होंने खेद व्यक्त करते हुए अपनी गलती स्वीकार कर ली। इसके बाद प्रकरण

समाप्त हो जाना चाहिए था। परन्तु श्री भाष्यम को खेद व्यक्त कर देने से संतोष नहीं हुआ। वे तो श्री पिल्लै को पाठ पढ़ाना चाहते थे। उन्होंने 'मद्रास स्टेण्डर्ड' पर मानहानि का मुकदमा दायर कर दिया। अँगरेजी शासन में राष्ट्रवादी संपादक वैसे ही शंका की निगाह से देखे जाते थे। यह प्रकरण काफी चर्चित हुआ और श्री पिल्लै को इस मुकदमे में सजा भी हुई और उन्हें जुर्माना भी भरना पड़ा। श्री पिल्लै भी धुन के पक्के थे। सजा से छूटने के बाद भविष्य में ऐसी घटनाओं से निपटने के लिए उन्होंने मन बना लिया। उन्होंने इंग्लैंड जाकर बैरिस्टर बनने की ठानी। यद्यपि उनके पास धनराशि नहीं थी परन्तु उन्हें अपनी कलम पर विश्वास था। लेखन से वे इंग्लैण्ड में धन कमा लेने की क्षमता रखते थे। अतः वे इंग्लैण्ड चले गए। इंग्लैण्ड पहुँचने के कुछ माह बाद ही वहाँ के साप्ताहिकों और दैनिकों जैसे एशियाटिक क्वार्टर्ली, रिव्यू, द वीक एन्ड, द स्फियर, द न्यू एज आदि के वे प्रतिष्ठित लेखक बन गए। भारतीय संपादकों में ऐसा सम्पादक शायद ही दूसरा मिले जिसने विदेश जाकर अपने लेखन से धनराशि कमाकर न केवल नाम कमाया हो वरन बैरिस्टरी भी पास की हो।

श्री पिल्लै ओजस्वी वक्ता भी थे। राजनीतिक विश्लेषण और वस्तुपरक रेखांकन करने की उनकी क्षमता बेजोड़ थी। इंग्लैंड में उन्होंने एक बार दौरा कर कई स्थानों पर भाषण दिए थे। यह भाषण शृंखला इतनी सफल रही कि उनकी गणना उच्चकोटि के वक्ताओं में होने लगी थी। श्री रोमेशचन्द्र दत्त ने उन्हें एक पत्र भेजकर इस प्रकार बधाई दी - ''मैं आपको हाल ही सम्पन्न सफल दौरे के लिए हृदय से बधाई देता हूँ। मुझे विश्वास है कि भारत में इन भाषणों के बारे में पढ़कर जनता ऐसे अच्छे कार्य करने के लिए प्रोत्साहित होगी।''

इंग्लैंड में उनके लेखन को हाथों हाथ लिया गया और वे एक प्रकार से वहाँ भारतीय प्रतिनिधि के रूप में विख्यात हुए। पत्रकारी गुण तो उन्हें ईश्वरी देन स्वरूप मिले थे। इसीलिए उनका लेखन सटीक, पैना और रोचक हुआ करता था। इंग्लैंड से लौटकर उन्होंने वकालत करने के साथ ही देश सेवा का व्रत ले लिया परन्तु नियति को यह मंजूर नहीं था। इस होनहार देशभक्त पत्रकार और कलम के योद्धा की केवल 39 वर्ष की आयु में ही असमय मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के साथ एक बहादुर और अडिग पत्रकार हमसे छीन लिया गया। फिर भी उनका योगदान उनकी स्मृति को चिर स्थायी बनाए रखने के लिए पर्याप्त है। ❑❑

सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट

Website :
www.sapresangrahalaya.com
Email :
sapresangrahalaya@yahoo.com

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल की वेबसाइट में सप्रे संग्रहालय में संग्रहीत प्रचुर संदर्भ सामग्री की सूची, संग्रहालय के प्रकाशनों का संक्षिप्त परिचय, संग्रहालय आने वाले विद्वानों की सम्मतियाँ आदि विवरण सम्मिलित किए गए हैं। इस विपुल संदर्भ सामग्री का लाभ उठाने के इच्छुक शोधकर्त्ता, पत्रकार, लेखक एवं विद्यार्थी वांछित सामग्री की जानकारी सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट से प्राप्त कर सकते हैं।

साहसी पत्रकार डैफने की शहादत

■ रमेश नैयर

देश और दुनिया में साहसी पत्रकार लगातार मारे जा रहे हैं। वो इसलिए कि अनाचार और अत्याचार के विरुद्ध जब सभी संस्थाएँ मौन रह जाती हैं तो पत्रकार आवाज उठाता है। आजकल पत्रकारों को भरमाने और उन्हें प्रलोभनों के तराजू पर तौलने की कोशिशें जरा ज्यादा ही तेज हो गई हैं। बहुतेरे हैं जो अपने धरम-ईमान सहित उस तराजू पर तुल जाने को तत्पर रहते हैं, फिर भी पत्रकारों की वह प्रजाति अभी तक लुप्त नहीं हुई है, जो जान का भी जोखिम उठाने से कतराती नहीं। भारत में राजनेता, माफिया, डॉन, धर्म को धंधा बनाने वाले पाखंडी बाबा और कुछ चरमपंथी संगठन जगह-जगह साहसी पत्रकारों को ठिकाने लगाते रहते हैं। भारत में दायित्व के मोर्चे पर पिछले कुछ वर्षों में शहीद हुए पत्रकारों के नाम जगजाहिर हैं। सोशल मीडिया पर अनेक देशों की नामचीन शक्तिमान हस्तियों के काले चेहरे बेनकाब करने वाले विकीलीक्स के सरफरोश जूलियन असांजे ने जो तहलका मचाया था, उससे अनेक महाबलियों की टाँगे काँप उठी थीं। असांजे को अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं, परंतु अनेक शक्तिमान राजनेताओं के विद्रूप चेहरे भी बेनकाब हो गए। उन्हीं की राह पर चलते हुए, बल्कि एक छलाँग लगाकर आगे निकलकर पनामा पेपर्स को लीक करने वाली माल्टा की पत्रकार डैफने कैरुआना ने 52 देशों और उनके अनेक राज्यों के शासकों, प्रशासकों तथा उनके परिजनों के भ्रष्टाचार उजागर करने का जोखिम उठाया। डैफने 'इंटरनेशनल कॉन्सर्टियम ऑफ इन्वेस्टिगेटिव जर्नलिस्ट संस्था' से जुड़ी हुई थी। इस संस्था ने 1.15 करोड़ गोपनीय दस्तावेज जारी किए थे। इनमें भारत और पाकिस्तान सहित अनेक पिछड़े और विकासशील देशों के राजनेताओं की बेनामी पूँजी के विदेशी निवेश की भी जानकारी थी। पाकिस्तान की न्यायपालिका ने उनका संज्ञान लिया और प्रधानमंत्री मियाँ नवाज शरीफ को सत्ता से बेदखल होना पड़ा। भारत में अभी तक पनामा पेपर्स में आए लोगों के नाम पर सन्नाटा छाया हुआ है। किसी कार्रवाई की उम्मीद नजर भी नहीं आती। डैफने ने माल्टा के प्रधानमंत्री जोसेफ मस्कट, उनकी पत्नी और उनके चीफ आफ स्टाफ के आर्थिक भ्रष्टाचार के बारे में भी बहुत सारे तथ्य उजागर किए थे। प्रधानमंत्री जोसेफ को पद से इस्तीफा देना पड़ा। यह बात और है कि वह फिर से चुन कर आ गए।

17 अक्टूबर को डैफने की कार को बारूद से उड़ा दिया गया और वह शहीद हो गई। डैफने के पुत्र मैथ्यू भी अपनी बहादुर माँ की राह पर चल रहे हैं। डैफने किसी पत्र-पत्रिका अथवा इलेक्ट्रानिक मीडिया संस्थान में काम नहीं करती थीं। उनका ब्लाग ही इतना शक्तिमान था कि उस पर पोस्ट की जाने वाली सामग्री बड़े-बड़ों के दिल दहला दिया करती थी। माल्टा में उनकी लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि वहाँ के कुल 4.5 लाख की आबादी में से चार लाख लोग उनका ब्लाग पढ़ते थे। डैफने की शहादत को निश्चय ही मीडिया बिरादरी प्रणाम करती है। वह उनसे प्रेरित भी होती रहेगी। डैफने के पत्रकार पुत्र मैथ्यू ने सोशल मीडिया पर कहा है कि उनकी माँ कानून तोड़ने वालों को बेनकाब करने का साहस दिखाने के कारण शहीद हुई। मैथ्यू का यह कथन वक्त की दीवार पर लिखी हुई इबारत की तरह विश्व को एक संदेश दे रहा है कि सारी संस्थाएँ विफल हो जाती हैं तो पत्रकार अनाचार के खिलाफ खड़ा होता है। उसके विरुद्ध अंतिम साँस तक जूझने वाला व्यक्ति भी पत्रकार ही होता है। उसके लिए सबसे पहले शहीद होने

वाला भी पत्रकार ही होता है।

प्रश्न उठता है कि जब सबको मालूम है कि आज के निर्मम विश्व में सच बोलना बेहद जोखिम भरा काम है, तो वो कौन-सी दीवानगी है जो पत्रकार को जान हथेली पर रखकर समर में कूद जाने को विवश कर देती है? उत्तर यही हो सकता है कि पत्रकार ही तो है जो अनादिकाल से सच कहने का साहस करता आया है। पौराणिक कथाओं के देवर्षि नारद और महाभारत के संजय इसके प्रमाण हैं। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भी ऐसे जाँबाज पत्रकारों की कमी नहीं रही। एक उदाहरण है शांति नारायण भटनागर द्वारा संपादित साप्ताहिक 'स्वराज' का। उसके आठ पत्रकारों को ब्रिटिश सत्ता के दौरान कुल मिलाकर 94 वर्षों के सश्रम कारावास का दंड दिया गया था। संभवतः वह विश्व का एकमात्र प्रसंग था, जो और किसी देश में नहीं हुआ और न ही फिर भारत में। ऐसे में इन दिनों जब प्रिंट और चैनल मीडिया भय अथवा प्रलोभन से मैनेज होने लगा है तो पूरा सच कहने के लिए सोशल मीडिया की सक्रियता बढ़ती जा रही है। हवा का नया रुख बनाने और पुराने को बदलने की क्षमता भी इसमें दिखने लगी है। ठीक है कि सोशल मीडिया का कहीं-कहीं दुरुपयोग भी होने लगा है। अफवाहें फैलाने और चरित्र हनन में भी इसका दुरुपयोग होने लगा है। उसको प्रिंट मीडिया की भाँति कानून-कायदों की मर्यादा में रखने की माँग भी उठने लगी है। परंतु मानव मनोविज्ञान बताता है कि अंतस की आवाज लाख बंधनों के बाद भी मुखर हो ही जाती है। ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो अपने विचार और अपने हुनर को हर तरह का जोखिम उठाते हुए भी सोशल मीडिया पर व्यक्त करते रहे हैं। उनका जुनून याद करा देता है उर्दू की ये काव्य पंक्तियाँ :

''फन की लताफत को ले जाऊँ कहाँ आखिर
पत्थर का जमाना है, शीशे की जवानी है!''

(Email - rameshnayyar50@gmail.com)

एक ऋषि व्यक्तित्व का जाना

■ **अभिजीत**

कोलकाता के साहित्यिक जगत एवं सक्रिय सामाजिकों के लिए 30 नवंबर, 2014 का दिन काफी दुखद रहा। 30 नवंबर, इतवार की सुबह लगभग 6.30 बजे फोन की घण्टी बजी .... मिचमिचाती आँखों से देखा तो एक मित्र का मैसेज था। जैसे जैसे फोन पर आए उस संदेश को पढ़ता गया वैसे ही वैसे नींद उड़ती गई और शरीर और मन बोझिल होता गया। संदेश में कोलकाता के साहित्य और समाज के ऋषि सम व्यक्तित्व अशोक सेकसरिया के निधन का समाचार था। मैं वैसे ही चुपचाप लेट गया। शायद इस आशा में कि अभी जो कुछ भी देख समझ रहा हूँ वह एक स्वप्न है और थोड़ी देर बाद जब सच में उठूँगा तो सब कुछ सामान्य ही पाऊँगा। लेकिन नींद नहीं आई... उल्टे अशोक बाबा की छोटी छोटी स्मृतियों ने परेशान करना शुरू कर दिया।

सबसे पहले मेरी बुआ के श्वसुर श्री योगेन्द्र पाल ने बुआ को मुझे अशोक बाबा से मिलवाने को कहा था। मैं उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में स्नातकोत्तर का विद्यार्थी था। उन्होंने मुझसे पूछा था पहले कि अशोक जी को जानते हो? फिर मेरे नासमझ से चेहरे को देखते हुए मुझे अशोक जी के व्यक्तित्व से परिचित कराया था। फिर बुआ से कहा था कि ये हिन्दी साहित्य का विद्यार्थी है और इसे अशोक जी से नहीं मिलवाई आज तक? जाओ किसी दिन मिलवा लाओ। कुछ दिनों बाद बुआ ने मुझे एक फोन नंबर दिया और कहा कि ये अशोक जी का नंबर है, उनसे बात कर लो और जो समय वो

बताएँ उनसे जा कर मिल लो। साथ ही बुआ ने एक हिदायत भी दी कि कोशिश करना कि वे जो कुछ कहें उसे ठीक से पूरा पूरा सुनना... अपनी बक बक मत करने लगना। मैंने कहे अनुसार उनसे बात की... उधर से हल्की हाँफती और खाँसती-सी आवाज में अशोक जी से पहली बार बात हुई। उन्होंने शाम का समय दिया। उनसे मिलने से पहले मैं काफी नर्वस हो रहा था कि किसी साहित्यिक हस्ती से मिलने जा रहा हूँ, वह भी उनके घर पर व्यक्तिगत तौर पर। लेकिन जब पहले तल्ले पर स्थित उनके कमरे में प्रवेश किया तो कुछ सामान्य-सा महसूस किया। सफेद कुर्ते पायजामे में अस्त-व्यस्त सी एक वृद्ध काया सामने की एक छोटी सी पलंग पर बैठी सिगरेट जलाने का प्रयास कर रही थी। मुझे आते देख वे मुखातिब हुए और नाम बताते ही बड़ी आत्मीयता से अपनी बड़ी दाढ़ी और मूछ के अन्दर से मुस्कुराते हुए सामने की छोटी पलंग पर बैठने को कहा। मैंने श्रद्धावश पाँव छूने की कोशिश की तो बिलकुल मना कर दिया। शुरुआती बातचीत में मैं उन्हें 'सर' कह कर संबोधित कर रहा था। तकरीबन 5-10 मिनट में उन्होंने इस संबोधन पर भी रोक लगा दी। फिर आगे तो इतने सहज, आत्मीय और मित्रवत बातें चलती रहीं कि दो घण्टे कैसे बीते पता ही नहीं चला। बातचीत में बड़े ही हँसमुख और सटीक लगे थे अशोक बाबा पहली बार में ही। लेकिन पहली मुलाकात में उनसे बस इधर की बातें ही होती रहीं... कुछ घर परिवार की .... कुछ पढ़ाई लिखाई की। बुआ के दोनों बच्चों के प्रति उनका बड़ा स्नेह था। वे कभी शोभा (बुआ) के बारे में उतना नहीं पूछते थे जितना उनके बच्चों - गुड्डू (बेटी) और कुंजू (बेटे) के बारे में। गुड्डू और कुंजू के लिए भी 'दाढ़ी वाले बाबा' कुछ कम प्रिय नहीं थे।

अशोक जी से दूसरी मुलाकात मेरी उन दिनों की है जब मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय में ही एम. फिल. का छात्र था और काशीनाथ सिंह के उपन्यासों पर शोध कर रहा था। एक दिन यूँ ही भारतीय भाषा परिषद से लौटते वक्त उनसे मिलने को जी हुआ तो चला गया। हमेशा की तरह कमरा खुला था और अशोक जी हमेशा की तरह अस्त-व्यस्त से दिखे, लेकिन इस बार वे सोए थे नींद से। मैं चुपचाप जाकर सामने वाली पलंग पर बैठ गया। करीब एक घण्टे बैठा रहा और कमरे में इधर उधर ताकता रहा। समूचे कमरे में सिर्फ किताबें ही किताबें बिखरी हुई.. बेतरतीब ढंग से। साथ ही कुछ बड़े आकार की पेंटिग्स भी दिखीं। अशोक जी की पलंग के नीचे तक कागज (कुछ हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ), किताबें और पत्रिकाएँ बिखरी हुई थीं और उन्हीं कागजों के बीच ऐशट्रे... और ऐशट्रे से छिटके सिगरेट की राख के चित्तियाँ। घण्टे भर बाद जब अशोक जी की आँख खुली तो मुझे चुप बैठा देख हतप्रभ हुए। बोले कि जगाया क्यों नहीं? बहरहाल बात चली। बात बात में उन्होंने पूछा कि कुछ लिखते हो कि नहीं? मेरे बैग में उस वक्त काशीनाथ जी के ही संस्मरण 'याद हो कि न याद हो' पर जमा करने के लिए शोध पत्र पड़ा था... सो मैंने वो उनके हाथ में रख दिया। मुझे आश्चर्य हुआ कि उन्होंने बड़ी गंभीरता से मेरे उस शोधपत्र को पूरा का पूरा पढ़ लिया... फिर मैंने कहाँ कहाँ गलतियाँ की हैं.... कहाँ कहाँ मेरी दृष्टि अपरिपक्व लग रही है। किस तरह नए आलोचकों को उद्धृत करते वक्त सावधानी बरतनी होती है? - इस तरह की तमाम बारीकियों पर काफी देर तक समझाते रहे। मेरे लिए ये एक आशीर्वाद की तरह था और मैं अवाक भी था यह देख कर कि आज कोई ऐसा भी है जो मुझ जैसे गर्भस्थ विद्यार्थी और अध्येता को इतनी तन्मयता से पढ़ कर उसमें सुधार करने की जहमत भी उठाता है।

अशोक जी की एक और खास रुचि थी जिसके बारे में शायद काफी कम लोगों को पता हो। वे क्रिकेट में गहरी रुचि रखते थे। चूँकि मैं विद्यार्थी जीवन में इस खेल से लगभग पेशेवर तौर पर जुड़ा था इसलिए एक दिन यूँ ही बात बात में क्रिकेट की बात चल निकली। धीरे-धीरे मुझे

आभास होने लगा कि पेशेवर तौर पर जुड़े होने के बावजूद मैं अशोक बाबा से इस खेल के इतिहास और सैद्धांतिक तकनीक पर बात करते वक्त कहीं न कहीं लटपटा रहा था। ये एक नई मुसीबत थी मेरे लिए। मुझे लगा कि अगली बार से या तो क्रिकेट की बात को ही दरकिनार करना है या फिर आने से पहले तकनीकी तौर पर और जानकारियाँ हासिल कर लेनी चाहिए। लेकिन जब से अशोक बाबा को पता चला था कि मैं क्रिकेट से पेशेवर तौर पर जुड़ा हूँ वो हमारी मुलाकातों में अदबदा कर क्रिकेट की बात छेड़ते थे और मैं धीरे-धीरे हथियार डालते चला जाता था।

इसके बाद अशोक बाबा से कई बार मिलने का मौका मिला और हर बार वे कुछ नया देते थे... हर बार वे जैसे सामने वाले को अपने और करीब कर लेते थे। लेकिन यह मेरा दुर्भाग्य ही रहा कि उनके जीवन के अंतिम दिनों में मैं उनसे नहीं मिल पाया। नौकरी की दौड़ और कुण्ठा में अपने से समय ही न निकाल पाया कि एक बार उनसे मिल सकूँ। पिछले कई महीनों से बुआ कहती रही कि अशोक जी तुम्हें याद कर रहे थे... तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे... एक बार जाकर मिल लेना चाहिए तुम्हें उनसे। आज जब वे नहीं रहे तो समझ आया कि बुआ क्यों इतना जोर दे रही थीं? ये जोर बुआ से अधिक अशोक बाबा के हृदय में मेरे प्रति स्नेह का रहा होगा। लेकिन नियति के सामने कौन क्या कर पाया? आज मैं भी अपनी कलम और सजल नेत्रों से अशोक बाबा को श्रद्धांजलि देते हुए इससे ज्यादा क्या कह सकता हूँ - मुझे माफ कीजिएगा बाबा।

पुनश्च : अशोक जी एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक संस्था थे। कोलकाता के साहित्य जगत में शायद ही कोई ऐसा हो जो उन्हें जानता और मानता न हो। विचारों से आधुनिक अशोक जी युवाओं के बड़े पक्षधर थे। युवा लेखकों के प्रति विशेष स्नेह और उनके रचना कर्म के प्रति जिज्ञासा उनकी वृत्ति में थी।

कोलकाता के कई बड़े साहित्य और शैक्षिक संस्थानों की स्थापना में अशोक जी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता - चाहे वह श्री शिक्षायतन कॉलेज हो, या फिर भारतीय भाषा परिषद, बंगीय हिन्दी परिषद या फिर विश्वभारती का हिन्दी भवन हो। अशोक जी का जाना कोलकाता के साहित्य और सक्रिय सामाजिक जगत के लिए अपूरणीय क्षति है क्योंकि अशोक सेकसरिया जैसा व्यक्तित्व विरले ही बनता है। उनका जीवन उन समाजवाद का नगाड़ा पीटने वालों के मुँह पर जोरदार तमाचा था जो समाजवाद के झण्डे तले तमाम सुख सुविधाओं पर लार टपकाते रहे। अंततः सादगी और मानवता के इस ऋषि की अंतिम विदाई पर हमारी विनम्र श्रद्धांजलि। ❑❑

- पता, फोन-मोबाइल नं., ईमेल बदले तो सूचना दीजिए ताकि संपर्क बना रहे।
- जब किन्हीं पाठक का पता बदल जाए, तब कृपया अपना नया डाक का पता, पिन कोड नं. सहित तत्काल सूचित करने का कष्ट करें।
- कृपया टेलीफोन नं., मोबाइल नं. और ईमेल भी भेजिए।
- संवाद का सिलसिला बनाए रखने के लिए यह जरूरी है।

संपादक 'आंचलिक पत्रकार' (मो. 09425011467)
- ईमेल -
editor.anchalikpatrakar@gmail.com, sapresangrahalaya@yahoo.com

समाज, प्रकृति और विज्ञान पर संगोष्ठी

प्रकृति संरक्षण के लिए ज्ञान यज्ञ

रपट - राजेन्द्र हरदेनिया

'समाज, प्रकृति और विज्ञान' संगोष्ठी का शुभारंभ विधानसभा अध्यक्ष डा. सीताशरण शर्मा ने किया।

'समाज, प्रकृति और विज्ञान' जैसे अनूठे विषय पर 29 अक्टूबर को आनंद भूमि, पिपरिया में एक-दिवसीय संगोष्ठी संपन्न हुई। संगोष्ठी का शुभारंभ मुख्य अतिथि विधानसभा अध्यक्ष डा. सीताशरण शर्मा ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता पूर्व विधायक हरिशंकर जायसवाल ने की। प्रकृति के प्रतीक के रूप में एक मेज विशेष तरह से सजाई गई थी। मिट्टी, उस पर कलश, कलश में जल, उस पर दीपक, उसके दोनों ओर पौधे रखे गए थे। उस दीपक को डा. शर्मा ने प्रज्ज्वलित किया। ऐसा लगा जैसे पंच तत्व का पूजन किया गया हो। पद्मश्री विभूषित श्री रामचंद्रुडु द्वारा रचित संस्कृत गीत 'प्रकृति : रक्षति रक्षिता' की संगीतमय प्रस्तुति श्री हरि मिश्रा ने दी। इस गीत का अर्थ है कि प्रकृति की रक्षा करने से हमारी रक्षा होगी अन्यथा महाविनाश होगा। संगोष्ठी का आयोजन सप्रे संग्रहालय, भोपाल तथा नवचेतना समिति, पिपरिया के संयुक्त तत्वावधान में किया गया था। मुख्य सूत्रधार और संयोजक नगर के वरिष्ठ पत्रकार श्री राजेन्द्र हरदेनिया थे। संयोजन में श्री विजयदत्त श्रीधर तथा श्री कृष्ण गोपाल व्यास का सहयोग रहा। कार्यक्रम तीन सत्रों में चला, जिसमें दूसरे सत्र में पूर्व केन्द्रीय मंत्री एवं वर्तमान सांसद श्री प्रहलाद पटेल बतौर मुख्य अतिथि तथा प्रदेश के पूर्व मंत्री, सिवनी मालवा के विधायक श्री सरताज सिंह सत्र अध्यक्ष के रूप में उपस्थित रहे। तीसरा सत्र प्रश्नोत्तर का था जिसमें किसान नेता श्री दर्शन सिंह चौधरी

मुख्य अतिथि तथा पंडित श्री मदनमोहन मुद्गल उपस्थित रहे। आमंत्रित विद्वान वक्ताओं में डा. अनिल सदगोपाल, श्याम बोहरे, कृष्णगोपाल व्यास, डा. नरेन्द्र गार्गव, रेहमत तथा डा. आशुतोष अग्निहोत्री उपस्थित थे। 'इंडिया वाटर पोर्टल' दिल्ली के हिन्दी संपादक श्री केसर सिंह विशेष रूप से उपस्थित थे। पिपरिया विधायक श्री ठाकुरदास नागवंशी ने संगोष्ठी में व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किए। कार्यक्रम का संचालन श्री ओम भार्गव तथा श्री किशोर डाबर ने किया।

श्री राजेन्द्र हरदेनिया ने संगोष्ठी के संदर्भ को स्पष्ट करते हुए कहा कि क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा - सभी पंच तत्वों पर आज मंडरा रहे संकट पर समग्रता से चिंता करने की जरूरत हैं। क्योंकि आज दुनिया में जीवन पर ही संकट छाया हुआ। इसके लिए समाज में चेतना जगाने की आवश्यकता है।

डा. सीताशरण शर्मा

मुख्य अतिथि डा. सीताशरण शर्मा ने कहा कि पहले वैज्ञानिक बंद कमरों में पर्यावरण पर चर्चा करते थे। अब यह चर्चा कमरों से निकलकर जन चर्चा का विषय बन गई है। जब यह जन चर्चा से जन चेतना में बदल जाएगी तो प्रकृति का संकट टल जाएगा और प्रकृति सँभल जाएगी। उन्होंने कार्यक्रम के आयोजकों को बधाई देते हुए कहा कि ऐसी संगोष्ठियों का सिलसिला चलना चाहिए। उन्होंने श्री कृष्ण गोपाल व्यास द्वारा प्रस्तुत नदी विज्ञान पर कहा कि बात समाधान तक आगे बढ़ना चाहिए। उन्होंने सप्रे संग्रहालय के संस्थापक-संयोजक श्री विजयदत्त श्रीधर से अपेक्षा की कि जो लोग भोपाल विधानसभा देखने जाते हैं, उन्हें वे सप्रे संग्रहालय भी दिखाना चाहते हैं। उन्होंने संग्रहालय के महत्व को रेखांकित करते हुए बताया कि वह अद्भुत है। वे संगोष्ठी की विषय वस्तु से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने श्री राजेन्द्र हरदेनिया तथा सहयोगियों से कहा कि वे ऐसी संगोष्ठी होशंगाबाद में आयोजित करना चाहते हैं, जिसकी जवाबदारी वे लें। जनसंख्या की वृद्धि को भी उन्होंने चिंताजनक बताया।

श्री विजयदत्त श्रीधर

श्री विजयदत्त श्रीधर ने विषय प्रवर्तन करते हुए भारतीय मनीषा की पुरातन समझ की सटीक व्याख्या की और बताया कि आज किस तरह इंसान के लालच ने प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है। उन्होंने भविष्य पुराण तथा अथर्व वेद के श्लोकों एवं सूक्तों का उल्लेख करते हुए कहा कि उस समय आज की तुलना में प्रकृति को सुरक्षित रखने के लिए ज्यादा विकसित सोच था। उन्होंने कहा कि विदेशी कंपनियों ने ज्यादा पैदावार के लिए रासायनिक खाद तो दिया पर यह नहीं बताया कि कितना खाद डालना है। नतीजा सामने है।

श्री कृष्ण गोपाल व्यास

जल विज्ञानी श्री कृष्ण गोपाल व्यास (भोपाल) ने नदी विज्ञान की सरल शब्दों में व्याख्या करते हुए नदी की तुलना वृक्ष से की। जिस तरह पेड़ को जीवित रहने के लिए जड़ों में पानी देना होता है, उसी तरह नदी की सहायक नदियाँ पेड़ की जड़ की तरह होती हैं। सहायक नदियों में पानी रहेगा तो मुख्य नदी स्वस्थ और अविरल रहेगी। उन्होंने कहा कि मात्र नदी किनारे वृक्षों से नदी का भला नहीं होगा, मैदानी क्षेत्र में वृक्ष लगाने से पानी बढ़ेगा, यही नदी विज्ञान है।

उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष श्री हरिशंकर जायसवाल ने कहा कि प्रकृति के जिन तत्वों से हमारा जीवन है उनके संकट से हमारा जीवन

कई जिलों से पधारे प्रकृति प्रेमी प्रबुद्ध जनों ने संगोष्ठी में सहभागिता की।

भी खतरे में पड़ेगा। इसलिए संरक्षण की जिम्मेदारी भी हम सबकी है। जनसंख्या बढ़ने से भी संसाधनों पर दबाव बढ़ गया है।

डा. अनिल सदगोपाल

डा. अनिल सदगोपाल (भोपाल) ने जीएम सीड तथा जेनेटिकली इंजीनियर्ड वायरस जैसे अति कठिन विषय को सरल शब्दों में प्रस्तुत किया और कहा के जीव और वनस्पति सभी के जीन का निजी ढाँचा होता है। उस जीन में ही भविष्य के सारे निर्देश एवं सूचनाएँ संग्रहीत होती हैं। उन्हें डीएनए कहते हैं। उस जीन में हस्तक्षेप करके उसमें संशोधन एवं परिवर्धन कर नए गुणों वाला बीज या नए गुणों वाला रोग का विषाणु तैयार किया जाता है। जैसे देश में विदेशों से विपुल उत्पादन के बीज आए लेकिन उनके जीन में रोग भी आए जिन्हें अलग तरह की कीटनाशक दवाइयों की जरूरत पड़ी। इस तरह विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने पहले बीज में मुनाफा कमाया और फिर रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाइयों में। ये कंपनियाँ कोई समाज सेवा नहीं करतीं। बल्कि माँग पैदा करके मुनाफा कमाती हैं। ये कंपनियाँ जेनेटिकली इंजीयरिंग से बीमारी के वायरस तैयार करती हैं, फिर उनसे बचने के वैक्सीन बनाती है। पहले बीमार करती हैं, फिर वैक्सीन से इलाज कर पैसा कमाती हैं। इसी तरह त्वचा के गोरा बनाने की क्रीम का गोरखधंधा चला रखा है। त्वचा का रंग हमारी अनुवांशिकी का परिणाम है। लेकिन विज्ञापन के जरिये गोरा बनने की भूख जगाते हैं। यह कृष्ण का देश है, फिर गोरेपन की चाह क्यों? यहाँ की जलवायु ऐसी ही है।

श्री प्रहलाद पटैल

सांसद श्री प्रहलाद पटैल ने कहा कि प्रकृति का संरक्षण हर व्यक्ति का दायित्व है। हर व्यक्ति को अपने जीवनकाल में एक हजार वृक्ष लगाना चाहिए। आदिवासी-वनवासी ये लोग सही प्रकृति संरक्षक हैं। आदिवासियों में स्वच्छता और शुचिता का भाव बहुत विकसित है। उन्होंने जल संकट के दौर में शौचालयों की सार्थकता पर प्रश्न उठाते हुए कहा कि यह सवाल वे संसद में भी उठा चुके हैं। उन्होंने बताया कि उनके परिवार में परंपरागत रूप से तीन बीजों के संरक्षण की प्रथा है जिसे वे

आज भी कायम रखे हुए हैं। खेती का पशुधन से सीधा नाता है। वे देशी गाय पालते हैं। गाय के मरने के बाद वे गहरा गड्ढा करके उसमें गाड़ देते हैं और उसके ऊपर पौधरोपण करते हैं। उन्होंने श्री हरदेनिया से कहा कि इस तरह की संगोष्ठी वे दमोह के अभयारण्य में करना चाहेंगे। उन्होंने कहा कि संकल्प में विकल्प मत तलाशो। नदी को नहर मत बनाओ।

डा. आशुतोष अग्निहोत्री

कैंसर विशेषज्ञ डा. आशुतोष अग्निहोत्री (जबलपुर) ने बताया कि रासायनिक खेती से मिट्टी जहरीली हो गई है। उसकी स्वाभाविकता नष्ट हो गई है। मिट्टी के पोषण वाले सभी जीव जंतु नष्ट हो गए हैं। इससे मिट्टी तनाव में होती है। उस मिट्टी से उपजे अनाज के कारण ही तनाव, मानसिक रोग, ब्लड प्रेशर, कैंसर जैसी घातक बीमारियाँ पैदा हो रही है। इनसे बचने के लिए पुरातन प्राकृतिक खेती ही विकल्प है। इस कारण उन्होंने स्वयं निजी उपयोग के लिए प्राकृतिक खेती करना शुरू किया है।

डा. नरेन्द्र गार्गव

डा. नरेन्द्र गार्गव (भोपाल) ने कहा कि औद्योगिक और उत्तर आधुनिक समाज ने पृथ्वी का पर्यावरण नष्ट कर डाला है। मनुष्य जाति को बचाना है तो जरूरी है कि पृथ्वी अपनी तमाम प्राकृतिक संपदा और जैव विविधता के साथ बची रहे। समस्या वैश्विक है और वैश्विक स्तर पर प्रयास भी हो रहे हैं। पर इस दिशा में सफलता हम में से हर एक द्वारा किए जाने वाले प्रयासों पर निर्भर करती है। श्री सरताज सिंह (इटारसी) ने कहा कि सरकार और समाज दोनों को जागरूक होने की जरूरत है।

श्री बोहरे, श्री रहमत

श्री श्याम बोहरे (भोपाल) ने जैव विविधता की। व्याख्या बहुत सरल शब्दों में की तथा जंगल की संदर्भित पाती भी सुनाई। उन्होंने आसन्न संकटों का उल्लेख किया।

श्री रहमत (बड़वानी) ने ग्लोबल वार्मिंग पर वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया और कहा कि ग्रीन गैसों से धरती गरम हो रही है। इससे जो जीव ज्यादा गर्मी सहन नहीं करते उनकी प्रजाति नष्ट हो जाएगी। अनाज उत्पादन घटेगा। दुनिया में समुद्र के पानी की सतह काफी ऊँची उठ जाएगी जिससे समुद्र किनारे के शहरों के डूबने का खतरा है। ज्यादा से ज्यादा वृक्ष लगाने से वे कार्बन डाइ आक्साइड गैस सोखेंगे, जिससे ग्रीन गैस का खतरा कम हो सकता है।

समयाभाव के कारण तीसरे सत्र में ज्यादा प्रश्नोत्तर नहीं हो सके। फिर भी कुछ प्रश्नों के उत्तर दिए गए। श्री मुद्गल जी एवं श्री दर्शन सिंह चौधरी ने भी विचार रखे। पहले सत्र में श्री रघुनाथ गट्टानी, दूसरे सत्र में श्री राजीव जायसवाल तथा समापन पर श्री आनन्द व्यास ने भावभीना आभार माना।

संगोष्ठी की विशेषता यह थी कि खुले आमंत्रण के बजाए इसमें प्रबुद्ध श्रोता ही आमंत्रित थे। श्रोताओं में पिपरिया नगर के अलावा पचमढ़ी, बनखेड़ी, पिपरिया के आस पास के ग्रामीण इलाके, गाडरवारा तहसील के कई गाँवों सहित गाडरवारा, करेली, नरसिंहपुर, जबलपुर, सागर बड़ी देवरी, सोहागपुर, बाबई, होशंगाबाद, इटारसी और भोपाल से भी प्रतिभागी आए थे। कार्यक्रम में गाडरवारा के श्री सुशील शर्मा (गाडरवारा) की पुस्तक 'दरकती संवेदनाएँ' का विमोचन श्री प्रहलाद पटैल, श्री सरताज सिंह तथा मंचासीन अतिथियों ने किया।

(Email - rajhardenia@gmail.com)

जन्म शताब्दी

इंदिरा गांधी की शौर्य-गाथा

महान विजय! १६ दिसंबर १९७१ को ढाका में पाकिस्तान के सेनापति लेफ्टिनेंट जनरल ए.ए.के. नियाजी ने ९०००० से अधिक सैनिकों और अधिकारियों के साथ भारत के सेनापति लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के समक्ष आत्मसमर्पण किया। दुनिया के इतिहास में लेनिनग्राद के बाद यह दूसरा सबसे बड़ा आत्मसमर्पण था। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के महान नेतृत्व में इस प्रकार गौरवशाली इतिहास लिखने के साथ-साथ दक्षिण एशिया का नया भूगोल भी रचा गया। स्वतंत्र बांग्लादेश का जन्म हुआ।

युवा पत्रकारों के लिए सप्रे संग्रहालय की पहल

1. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी फेलोशिप
2. गंगाप्रसाद ठाकुर पत्रकारिता फेलोशिप

प्रक्रिया एवं नियमावली

1. नाम

(1) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी फेलोशिप (अखिल भारतीय)

(2) गंगाप्रसाद ठाकुर पत्रकारिता फेलोशिप (मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़)

2. संस्थान

माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल

3. उद्देश्य

i. युवा पत्रकारों को सामाजिक सरोकारों की पत्रकारिता के लिए प्रेरित और प्रवृत्त करना। लोकहित के मुद्दों के गहन अध्ययन, तथ्य-संग्रह और विश्लेषण तथा लेखन के लिए उत्साहपूर्ण परिवेश प्रदान करना। प्रकाशन एवं व्यापक संवाद का मंच उपलब्ध कराना।

ii. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी फेलोशिप साहित्य-कला-संस्कृति-शिक्षा-भाषा विषयक मौलिक और अछूते विषयों के लिए है। इसका दायरा अखिल भारतीय है।

iii. गंगाप्रसाद ठाकुर पत्रकारिता फेलोशिप कृषि-पर्यावरण-चिकित्सा-लोक प्रशासन-सामाजिक समरसता के लिए है। इसका दायरा मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ है।

4. अवधि

कुल एक वर्ष। (समय बढ़ाया नहीं जाएगा)।

5. फेलोशिप धनराशि

प्रत्येक फेलोशिप के लिए ₹ 50,000/- (पचास हजार रुपये)।

6. भाषा

हिन्दी

7. पात्रता

- समाचार पत्र-पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन, वेब मीडिया में कार्यरत पत्रकार फेलोशिप के लिए आवेदन कर सकते हैं।
- आवेदक को पत्रकारिता का पाँच साल का अनुभव हो।
- न्यूनतम आयु 25 वर्ष और अधिकतम आयु 40 वर्ष।
- शैक्षिक योग्यता किसी भी विषय में स्नातकोत्तर उपाधि।

8. आवेदन

- प्रत्येक वर्ष नवंबर में आवेदन लिए जाएँगे।
- स्वलिखित आवेदन पत्र में नाम, पिता/पति का नाम, जन्मतिथि, जन्मस्थान, शैक्षिक योग्यता, कार्य- अनुभव, पिनकोड नंबर सहित पूरा पता, फोन एवं मोबाइल नं., ई-मेल पता लिखना है।
- प्रकाशित आलेख/फीचर/रिपोर्ट की तीन कतरनें संलग्न करनी हैं।
- फेलोशिप के प्रस्तावित विषय की विस्तृत रूपरेखा (सिनॉप्सिस) संलग्न करनी है।
- विषय का चयन करते समय इस तथ्य का ध्यान रखा जाना चाहिए कि फेलोशिप सामाजिक सरोकारों की पत्रकारिता के लिए है। जीवनियाँ, दलगत राजनीति और धर्म-जाति फेलोशिप के विषय नहीं हैं।

9. चयन

- फेलोशिप का निर्णय पैनल करेगा। पैनल में अनुभवी पत्रकार और विशेषज्ञ शामिल होंगे।
- उपयुक्त प्रस्ताव नहीं मिलने पर पैनल को आवेदन अस्वीकृत करने का अधिकार होगा।
- प्राप्त आवेदनों की छानबीन के बाद चुने गए आवेदकों का साक्षात्कार होगा।
- पैनल अपनी ओर से भी फेलोशिप का विषय सुझा सकता है।
- फेलोशिप के संबंध में सप्रे संग्रहालय का निर्णय अंतिम और बंधनकारी होगा।

10. कार्य-विधि

- फेलोशिप स्वीकृत होने के पश्चात कार्य-अनुबंध होगा। अनुबंध होने पर फेलो को 10 प्रतिशत राशि उपलब्ध कराई जाएगी।
- तीन माह में फेलोशिप अध्ययन का पहला पाठ प्रस्तुत करना होगा।
- पैनल, पाठ का परीक्षण कर आवश्यक सुझाव और मार्गदर्शन देगा। उसके आधार पर अगले तीन माह की अवधि में अंतिम पाठ तैयार कर प्रस्तुत करना होगा। इस चरण में फेलोशिप की 40 प्रतिशत राशि प्रदान की जाएगी।
- अंतिम पाठ के परीक्षण के पश्चात पैनल परिमार्जन के लिए निर्देशित कर सकता है। यह कार्य एक माह की अवधि में पूरा करना होगा।
- अंतिम पाठ के साथ 'मौलिक' कार्य होने का शपथ पत्र संलग्न करना जरूरी है।
- फेलोशिप प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए गोष्ठी आयोजित की जाएगी। इसमें सार-संक्षेप --PPP-- प्रस्तुत करना होगा। इसी अवसर पर फेलोशिप की शेष राशि प्रदान की जाएगी।
- स्वीकृत पाठ का प्रकाशन सप्रे संग्रहालय की पत्रिका 'आंचलिक पत्रकार' में किया जाएगा। फेलो को इसके अन्यत्र प्रकाशन-प्रसारण का अधिकार नहीं होगा।
- आलेख के अंतिम पाठ का आकार 12,000 से 15,000 शब्द संख्या होगा।
- ये फैलोशिप बेहतर पत्रकारों को तराशने की दृष्टि से महत्वपूर्ण होगी।

चंद्रकान्त नायडू
अध्यक्ष - फेलोशिप समिति
मो. 09415550666
Email - chandrakant.naidu@gmail.com

विजयदत्त श्रीधर
संस्थापक-संयोजक, सप्रे संग्रहालय
मो. 09425011467
Email - sapresangrahalaya@yahoo.com

नई किताब

हिन्दी क्रियाओं की रूप-रचना

■ लक्ष्मीशंकर गुप्त

ग्रन्थनाम	:	हिन्दी क्रियाओं की रूप-रचना
ग्रन्थकर्ता	:	डा. बदरीनाथ कपूर
प्रकाशक	:	लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद - 211001
संस्करण	:	प्रथम 2017
पृष्ठ संख्या	:	156
मूल्य	:	₹ 395

हिन्दी के व्याकरण सर्वप्रथम पादरियों द्वारा लिखे गए जो अँगरेजी व्याकरण की पद्धति पर व्याख्यात थे। आगे चलकर उनके लेखन में भारत के विद्वानों ने हाथ लगाया। वे भी एक सीमा तक संस्कृत व्याकरण से प्रभावित रहे। फिर हिन्दी के विद्वान ऐसे व्याकरण ग्रंथ लिखने लगे जो यथासंभव बाह्य प्रभावों से मुक्त थे। इसी क्रम में हिन्दी के विभिन्न पक्षों के विचारक और व्याख्याता, स्वनामधन्य डा. बदरीनाथ कपूर ने प्रभूत चिंतन-मनन के पश्चात अपने 'नवशती हिन्दी व्याकरण' की रचना की। उक्त ग्रंथ के लेखनकाल में उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दी व्याकरण के पथिकृतों ने हिन्दी के विविध क्रियारूपों और क्रियाओं के संयुक्त रूपों का विचार तो किया है, किंतु वह बहुत संक्षिप्त है और उसके विस्तार के विचार से वह दिशानिर्देश मात्र ठहरता है। इस रिक्ति की पूर्ति के लिए पाँच-छह वत्सरों तक अथक परिश्रम और मनन करके उन्होंने 'हिन्दी क्रियाओं की रूप-रचना' संज्ञक डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों के ग्रंथरत्न को जन्म दिया जिसमें हिन्दी की संयुक्त क्रियाओं का अच्छा विवरण और संकलन प्रस्तुत हो गया है। उक्त ग्रन्थ में क्रियारूपों में प्रयुक्त प्रत्ययों के नाम बड़े सरल, स्पष्ट और मुग्धबोध्य है। उनमें संस्कृत व्याकरण के प्रत्ययों के समान कुछ जोड़-तोड़ करने की आवश्यकता नहीं है।

हिन्दी की संयुक्त क्रियाओं में चार-चार पाँच-पाँच धातुओं के कृदंत एक साथ प्रयुक्त हो जाते हैं जिससे मुख्य क्रिया के अर्थ में विलक्षण व्यंजना उत्पन्न हो जाती है। उस व्यंजना को व्यक्त करने में संस्कृत, अँगरेजी आदि सशक्त भाषाएँ भी असमर्थ हो जाती हैं। उदाहरणार्थ - 'वह उठा', 'उसने कुत्ते को मारा' का अनुवाद तो सरलता से हो जाएगा, किन्तु 'वह उठ पड़ा', वह उठ बैठा, 'चलन उठ गई', 'सभा उठ गई', 'उसने सिंह को मार गिराया', 'भेड़िए को मार डाला', 'भाई को मार बैठा' का कोई कर ले अनुवाद। संयुक्त क्रिया का सूक्ष्मार्थ कहाँ व्यक्त हो पाएगा? कपूर जी ने तो संयुक्त क्रियाओं की रूप-रचना का विचार किया है, अब इनके अर्थों के सूक्ष्म विश्लेषण के लिए उच्च कोटि के विवेचकों की अपेक्षा है।

इस ग्रन्थ में कपूर जी ने क्रिया के वाच्यों पर भी विचार किया है और परम्परा से हटकर अपना अलग निर्णय प्रस्तुत किया है जिस पर कतिपय विद्वानों को आपत्ति हो सकती है। किंतु, यह अलग विवाद का विषय है। यदि वितंडावाद न हो, तो विवाद बुरा नहीं है, क्योंकि 'वादे-वादे जायते तत्वबोधः'।

कपूर जी ने हिन्दी की प्रभूत सेवा की है, इसे हिन्दी जगत जानता है। उनकी यह कृति मौलिक और श्लाध्य है। एतदर्थ वे हिन्दी के अध्येताओं के धन्यवाद के पात्र हैं। परमेश्वर उन्हें सुस्वास्थ्य और दीर्घायुष्य प्रदान करे। उनकी यशस्कौमुदी विद्वज्जगत को आल्हादित करे। इस मंगलकामना के साथ उनका वर्धापिन।

(समीक्षक काशी विद्यापीठ में हिन्दी विभाग के आचार्य रहे हैं।)

सप्रे संग्रहालय में 'लोक संवाद'

राजनीतिक कारणों से देना होती है वीआईपी सुरक्षा

सरकार में वीआईपी सुरक्षा दिए जाने का कोई प्रावधान नहीं है, सिर्फ राजनीतिक कारणों से यह उपलब्ध कराई जाती है। इसका खामियाजा अंततः आम आदमी को ही उठाना पड़ता है। यह कहना है पूर्व पुलिस महानिदेशक सुभाषचंद्र त्रिपाठी का। वे 14 अक्टूबर को माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय द्वारा प्रतिमाह आयोजित की जाने वाली शृंखला 'लोक संवाद' के तहत 'सुरक्षा का सवाल : वीआईपी बनाम आम आदमी' विषय पर बतौर मुख्य वक्ता बोल रहे थे। आयोजन की परंपरा के अनुसार मुख्य वक्तव्य के बाद वहाँ उपस्थित हर व्यक्ति ने अपने विचार एवं जिज्ञासाएँ रखीं।

पुलिस विभाग के अधिकार, विवशताएँ तथा सामाजिक-प्रशासनिक जिम्मेदारियों का बड़ा ही सटीक और बारीकी से विश्लेषण करते हुए श्री त्रिपाठी ने कहा कि पुलिस का पहला काम है लोगों को सुरक्षा देना। इसके अंतर्गत उसकी जिम्मेदारी बनती है कि समय पर पीड़ित को सहायता उपलब्ध हो, दूसरा अपने आस-पास की गतिविधियों पर नजर रखना और सूचनाओं को एकत्र करना। यह सब तब हो सकता है जब थाना या पुलिस चौकियों में कर्मचारी मौजूद हों। लेकिन होता यह है कि वीआईपी ड्यूटी के चलते उनके पास समय ही नहीं रहता। नतीजतन पीड़ित को सही वक्त पर सहायता नहीं मिल पाती। उन्होंने इस तथ्य को भी स्वीकारा कि बड़े लोगों की ड्यूटी करने के लिए पुलिसकर्मी भी लालायित रहते हैं, इससे उनके अपने हित भी सधते हैं। इस प्रवृत्ति ने फोर्स संस्कृति पर भी प्रहार किया है।

इतना ही नहीं, उन्होंने पुलिस के अधिकारियों से भी यह अपेक्षा जताई कि यदि कोई व्यक्ति उनके पास रात-बेरात भी सूचना लेकर आता है तो उसे पूरा महत्व दें। यदि टाल-मटोल किया तो हो सकता है अगली बार आपके पास आने में सकुचाये। उन्होंने आम आदमी से भी अपनी सुरक्षा के प्रति सचेत रहने की सलाह दी। उनका कहना था कि पहले अपना ध्यान रखें यदि फिर भी कुछ अनहोनी होती हो तब पुलिस के पास जाएँ। उन्होंने बताया कि केन्द्र के पास प्रधानमंत्री की सुरक्षा के लिए एसपीजी जैसी इकाई है, लेकिन राज्य स्तर पर ऐसी कोई शाखा नहीं होती है।

कार्यक्रम के दूसरे चरण में आपसी संवाद के क्रम में वरिष्ठ पत्रकार राकेश दुबे ने साधु-संतों तथा अन्य राजनेताओं को मिलने वाली सुरक्षा का सवाल उठाया। इसी तरह शिक्षाविद एस.के. कुलश्रेष्ठ ने बाकायदा आँकड़े देकर दूसरे देश और भारत में वीआईपी की संख्या का अंतर और इससे पड़ने वाले बोझ का जिक्र किया।

संग्रहालय के संस्थापक-संयोजक विजयदत्त श्रीधर ने राम-रहीम जैसे संतों को मिले कमांडो तथा उनके दुरुपयोग पर चिंता जताई। ओ.पी. गौड़ ने होमगार्ड जैसी संस्था के मानव बल का उपयोग करने का सुझाव दिया। प्रो. रत्नेश ने वीआईपी सुरक्षा के निर्धारण संबंधी सवाल उठाया। इस सत्र में श्री कृष्णगोपाल व्यास, श्री चंद्रकांत नायडु, श्री कमलेश पारे आदि ने भी हिस्सा लिया।

■ **दीपक पगारे**

(Email - deepakpagare67@gmail.com)

पाती

जन-मानस की अभिव्यक्ति, सद्भावों की उद्भूति और नैतिकता की त्रिवेणी 'सप्रे तीर्थराज' है जो संचार-संस्थानों को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करने के निमित्त संकल्पित है। 'समाज, प्रकृति और विज्ञान' ग्रंथ द्वारा भारत की सांस्कृतिक जागृति का शंखनाद स्तुत्य है। 'आंचलिक पत्रकार' (अक्टूबर 2017) में प्रकाशित 'रामदहिन ओझा की पत्रकारिता', सप्रे की समावेशी अमानत जैसी कृतियाँ स्मरणीय हैं। इस अंक में 'गांधी मीमांसा' जैसी दुर्लभ थाती से पाठकों को सुपरिचित कराने के सत्प्रयास हेतु मैं व्यक्तिगत रूप से सप्रे संग्रहालय का पुजारी बन चुका हूँ।

विश्ववंद्य बापू पर बंकिमचंद्र चटर्जी, बाल गंगाधर तिलक तथा स्वामी रामतीर्थ का पर्याप्त प्रभाव है। अध्ययनशील, मननशील, मौलिक व्याख्याता पं. रामदयाल तिवारी ने स्वामी रामतीर्थ की उक्ति 'पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं' को चरितार्थ किया है। शारीरिक और मानसिक व्याधि से ग्रस्त पं. तिवारी ने विश्व के महापुरुषों के व्यक्तित्व कृतित्व के अवगाहन के बाद गांधी जी की प्रवृत्तियों का तुलनात्मक विवेचन किया है जो निर्विवादतः 'न भूतो न भविष्यति' है। भारतीय आत्मा के अवतार 'गांधी' के प्रति पं. तिवारी की अगाध श्रद्धा है। '.... गांधी का चरखा विश्वव्यापी आर्थिक संकट के निवारण के लिए योगेश्वर कृष्ण के चक्र-सुदर्शन का काम देगा' ..... 'उनकी आत्मकथा विश्व साहित्य की एक अद्वितीय रचना है' ..... 'मार्क्सवाद भारत में इसलिए सफल नहीं होगा क्योंकि वह गृह उद्यम के प्रतीक चरखे का समर्थन नहीं करता। 'गांधीज्म एक्सरेड' जैसी अन्य कृति द्वारा पूज्य तिवारी जी ने गांधीवाद की सामयिकता का विश्लेषण किया है। ठाकुर प्यारेलाल सिंह के पत्रकार पौत्र आशीष सिंह वस्तुतः बधाई के पात्र हैं जिन्होंने इस अप्रतिम थाती को संजोया तथा अपने व्यय पर प्रकाशित किया। कहा जाता है 'जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू', निश्चित ही यह परिवार प्रणम्य है जिसने लोकहित में यह सत्कार्य किया। मीडिया-जगत को सद्बुद्धि देने हेतु सप्रे संग्रहालय ने 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्वानि' को चरितार्थ किया है, जिससे संचार साधन पवित्र बने रहेंगे।

- डा. अर्जुन तिवारी, काशी

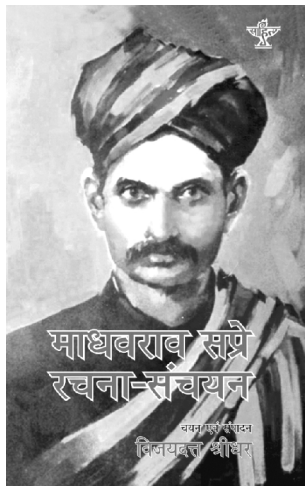

माधवराव सप्रे रचना-संचयन

चयन एवं संपादन : विजयदत्त श्रीधर
प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, 35, फीरोजशाह मार्ग, नईदिल्ली
पृष्ठ संख्या : 452
मूल्य : ₹ 400

प्राप्ति स्थान
विक्रय विभाग (साहित्य अकादेमी)
स्वाति, मंदिर मार्ग, नईदिल्ली - 110 001
ईमेल - sales@sahitya_akademi.gov.in

विशेष संक्षिप्त पुनरीक्षण -2018

कोई मतदाता न छूटे

क्या आप 1 जनवरी 2018 को या उससे पहले 18 साल के हो रहे हैं?

या

क्या आप 1 जनवरी 2017 को या पहले 18 साल के हो चुके हैं, फिर भी आप मतदाता के रूप में पंजीकृत नहीं हैं?

कौन और कैसे आवेदन कर सकता है

- एक भारतीय नागरिक।
- 1 जनवरी 2018 को या उसके पहले 18 साल आयु होने पर।
- मतदान क्षेत्र के साधारण निवासी।
- फार्म निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी (ईआरओ) और बूथ लेवल अधिकारी (बीएलओ) के पास उपलब्ध हैं, फॉर्म वेबसाइट www.ceomadhyapradesh.nic.in तथा www.eci.nic.in से भी डाउनलोड कर सकते हैं।

रंगीन फोटो अपडेट करावें, 1950 डायल करें

- यदि आपका वोटर कार्ड पुराना है और उसमें ब्लैक-व्हाईट फोटो है, तो बी.एल.ओ. को **रंगीन फोटो देकर फार्म 8 भरकर नया रंगीन मतदाता परिचय पत्र प्राप्त करें।** शुल्क रु. 25/- लागू। विस्तृत जानकारी और शिकायत के लिये टोल फ्री नंबर 1950 डायल करें।
- संबंधित फार्म भर कर एवं फोटो, पता और आयु के प्रमाण के साथ बी.एल.ओ. निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण अधिकारी या मतदाता सहायता केन्द्रों पर प्रस्तुत करें।

युवा मोबाइल एप से और ऑन-लाइन आवेदन करें

- राष्ट्रीय मतदाता सेवा पोर्टल (एनवीएसपी) www.nvsp.in खोलें।
- Apply On-line पर क्लिक करें। फार्म 6 में अपना नाम एवं पता भरकर अपने नाम को पंजीकृत करवाएँ तथा फोटो, पता और आयु के प्रमाण के साथ आवेदन को अपलोड करें। फार्म दावे आपत्ति प्रस्तुत करने की तिथि 4 अक्टूबर से 3 नवम्बर, 2017 तक है।
- यदि निर्वाचक नामावली की प्रविष्टियों में कोई संशोधन या सुधार करने की जरूरत हो तो निर्वाचक नामावलियों की प्रविष्टियों में सुधार करने पर क्लिक करके फार्म 8 भरें।
- प्रवासी मतदाता रजिस्ट्रेशन के लिये ऑनलाइन फार्म 6A में आवेदन कर सकते हैं।
- **मोबाइल एप ECI Apps से अपना फार्म भरें। इसे गूगल प्लेस्टोर से डाउनलोड करें।**

कौन से फार्म का इस्तेमाल किया जाना है

फार्म - 6	फार्म - 6A	फार्म - 7	फार्म - 8	फार्म - 8A
नए पंजीकरण के लिये या पते का एक विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से दूसरे विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र में परिवर्तन करने के लिए।	भारतीय पासपोर्ट धारक प्रवासी भारतीयों के लिए।	निर्वाचक नामावलियों से मौजूदा नाम को कटवाने के लिये या नाम शामिल किये जाने पर आपत्ति करने के लिए।	निर्वाचक नामावलियों की प्रविष्टियों में संशोधन या सुधार करने के लिए।	एक ही विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र के भीतर पते में परिवर्तन होने की दशा में।

पात्र युवा मतदाता पंजीकृत होने का मौका न गंवाएं!

For more Information & Help
Dial Toll Free No.
1950

लोकतंत्र में हिस्सेदारी, हर नागरिक की जिम्मेदारी।

आपका वोट - आपका भविष्य

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम/2017

मुख्य निर्वाचन पदाधिकारी मध्यप्रदेश द्वारा जनहित में जारी

मध्यप्रदेश

को
हॉल ऑफ फेम का राष्ट्रीय अवार्ड
तीन साल से लगातार
बेस्ट टूरिज्म स्टेट

श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

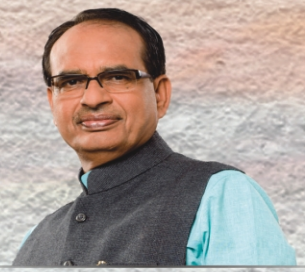

श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा

मध्यप्रदेश पर्यटन को 10 नेशनल अवार्ड से नवाजा गया

- हॉल ऑफ फेम अवार्ड बेस्ट स्टेट।
- जल–महोत्सव हनुवंतिया को मोस्ट इनोवेटिव टूरिस्ट प्रोडक्ट।
- बेस्ट स्टेट फॉर एडवेंचर टूरिज्म।
- **चंदेरी :** बेस्ट हेरिटेज सिटी।
- **खरगौन :** सिविक मैनेजमेंट ऑफ टूरिस्ट डेस्टिनेशन ऑफ इण्डिया।

पिछले साल 5 राष्ट्रीय अवार्ड

राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद ने नई दिल्ली में मध्यप्रदेश पर्यटन को 10 राष्ट्रीय अवार्ड से नवाजा। प्रदेश की ओर से पर्यटन राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) श्री सुरेन्द्र पटवा, पर्यटन निगम के अध्यक्ष श्री तपन भौमिक ने यह अवार्ड प्राप्त किये।

- **उज्जैन :** टूरिस्ट फ्रेंडली रेलवे स्टेशन।
- इंग्लिश कॉफी टेबल बुक को एक्सिलेंस इन पब्लिशिंग का नेशनल अवार्ड।
- बेस्ट फिल्म प्रमोशन फ्रेंडली स्टेट का नेशनल अवार्ड।
- बेस्ट वाइल्ड लाइफ गाइड का नेशनल अवार्ड, श्री सईब खान, पचमढ़ी।
- सिंहस्थ, 2016 के हिन्दी ब्रोशर को एक्सिलेंस इन पब्लिशिंग का नेशनल अवार्ड।

इसके पूर्व 6 राष्ट्रीय अवार्ड

Heritage | Wildlife | Pilgrimage | Leisure

Tourist Helpline No. 18002337777

https://www.mptourism.com
https://www.facebook.com/MPTourism
https://twitter.com/MPTourism
https://www.youtube.com/user/mptourism
https://in.pinterest.com/MpTourismDotCom
https://www.instagram.com/mptourism/

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी
आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2017